हृदय-अलंकरणम्

सुखद गृहस्थ जीवन की सनातन कुंजी

हृषिकेश

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Hrishikesh Mishra 2025

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7310-334-1

Cover design: Daksh
Typesetting: Tanya Raj Upadhyay

First Edition: October 2025

श्री गणेशाय नमः

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभ ।
निर्विघ्नम् कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ।

नवदंपत्तियों

एवं

गृहस्थ-जनों

को

सादर

समर्पित

प्राक्कथन

आध्यात्मिक जिज्ञासा के सुदृढ़ वाहन के माध्यम से, अतिव्यापक सनातन प्रज्ञा–वाटिका में भ्रमण के दौरान हुई मेरी सनातन धर्म के सिद्धान्तों की साधना की प्रत्यक्ष अनुभूति का परिणाम हृदय–अलंकरणम् नामक यह छोटी–सी, अति–सुगंधित प्रसूनगुच्छ परम–प्रभू–स्वरुप पाठकों को समर्पित है।

इस पुस्तिका के लेखन का मुख्य अभिप्राय सनातन धर्म के प्रति निरंतर क्षीण होती लोगों की धारणा को पुष्ट करने के लिए सनातन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों की आज के संदर्भ में विवेचना करना है। मैं अनुभव करता हूँ ,कि अन्य धर्मो के अपेक्षा सनातन धर्म की पुस्तकों की संख्या यथेष्ट हैं , जो संस्कृत भाषा में रचित है। परन्तु कतिपय कारणों से लोगों में संस्कृत अध्ययन के प्रति रुचि बहुत कम हो गई है , साथ ही साथ सनातन संस्कृति पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भी लगातार बढ़ रही है। जिसके कारण आज सनातन संस्कृति आड़म्बर के घने कोहरे में छुपती जा रही है। इसके कारण सबसे ज्यादा आडम्बर विवाह संस्कार में बढ़ रही है। सनातन संस्कृति को मानने वाले लोग आडम्बर के घने कोहरे के कारण विवाह संस्कार के मुख्य उद्देश्य सेभटकते जा रहे हैं। विवाह एवं गृहस्थ जीवन को केन्द्रित कर वैदिक धर्म अथवा सनातन धर्म की विवेचना एवं विमर्श इस पुस्तक की मुख्य अभिप्राय है।

*भारतीय दर्शन का एक अति प्रसिद्ध वाक्यांश है–**''सत्यम् शिवम सुंदरम''**,जिसका अर्थ है–सत्य सदा कल्याणकारी एवम् सुन्दर होता है। अतः विवाहोपरान्त गृहस्थ जीवन कल्याणकारी एवम् सुन्दर तब हीं हो सकता है, जब यह सत्य के सन्निकट हो। आज के समय में जब विवाह–संस्थान मात्र एक सामाजिक औपचारिकता प्रतीत हो रहा है, एवं पारिवारिक जीवन निरंतर विघटन की ओर अग्रसर है, ऐसे परिस्थिति में गृहस्थ आश्रम के मूलभूत सिद्धांतों को वैश्वीक दृष्टिकोण के आलोक में समझना नितांत आवश्यक हो गया है। इस पुस्तक के माध्यम से यही प्रयास किया गया है कि वैदिक काल*

के दर्शन से लेकर आधुनिक काल के दर्शन के माध्यम से,दाम्पत्य जीवन की आध्यात्मिकता, नीति और कर्तव्यबोध की गहराई से विवेचना की जाए।

इसी भावना को ध्यान में रखकर इस पुस्तक के विषयों को तीन भागों में विभाजित गया है।

*1. **सिद्धान्त खण्ड :–** पुस्तक के इस खण्ड़ में वैदिक विवाह संस्कार में होनेवाले प्रमुख उपक्रम सात–फेरों की प्रसांगिकता की विवेचना के उपरांत , विवाह में उपयोग में आने वाले ज्योतिष के प्रयोग जैसे विवाह मुहूर्त निर्धारण , अष्टकूट मिलान , मंगल दोष एवं गूढ़ ज्योतिष की सैध्यान्तिक विवेचना की गई है।*

*2. **विमर्श खण्ड** :–यह भाग सनातन धर्म से संबंधित प्राचीन शास्त्रों और आधुनिक दर्शन के मध्य सेतु स्थापित करता है। इसमें वैदिक साहित्य, एवं समकालीन वैचारिक आंदोलनों की सहायता से सनातन धर्म के मौलिक स्वरुप को जानने का प्रयास किया गया है।*

*3. **आचरण खण्ड़** :–इस खंड में आज के बदलते सामाजिक परिवेश में सनातन धर्म की मूल अवधारणाओं की वास्तविक जीवन में प्रासंगिकता एवं उपयोग को जानने का प्रयास किया गया है।*

*इस प्रकार **इस पुस्तक में समाहित सिद्धान्त–विमर्श–आचरण के त्रितंतु के माध्यम से एक दिव्यालोकित आभूषण अथवा अलंकरण के विनिर्माण की कोशिश की गई है, जिसके आभामंडल के प्रभाव से एक ऐसा सनातन–सत्य–कवच का निर्माण हो सके , जो सनातन धर्म पर किये जा रहे बौद्धिक आघात को निष्प्रभावी करने की क्षमता रखती हो। साथ हीं साथ इस पुस्तक में आध्यात्म –आधुनिक विज्ञान –व्यवहारिक संस्कृति की त्रिवेणी है , जिसके प्रज्ञा रुपी पावन जल में गोता लगाने से मानव के भौतिक आवरण के साथ–साथ अन्तःकरण की भी शुद्धिकरण हो जाती है।***

*इस पुस्तक के रचना की प्रेरणा मुझे मेरी पहली पुस्तक **कर्तव्यबोधहृषीकेश गीता** में उद्धृत **राधा–कृष्ण** नामक पाठ पर पाठकों के सकारात्मक प्रतिक्रिया से प्राप्त हुई । इस विषय पर मेरी द्विहिता, सुश्री. अपराजिता ने विस्तृत लेखन के लिए मुझे सर्वाधिक प्रेरित किया। इस लेखन में गूढ़ ज्योतिष के अन्तःस्रावी ग्रन्थि I–खगोलिये ग्रह संबंधों पर विवेचना के लिए मेरे पुत्र डॉ.*

वेंकटेश ,पुत्रवधू सौ. डॉ. तन्वी एवं कु० गौरव मिश्र ने मेरे उत्साह को और भी प्रबल किया। इस रचना को उपयोगी और सारगर्भित बनाने में मेरी पत्नी, सौ. अनीता मिश्र का योगदान अत्यंत सराहनीय है। पुस्तक रचना के उपरांत मेरे परिवाजनों एवं सुधी मित्रों ने अपना बहुमूल्य परामर्श देकर पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाने में अहम् भूमिका का निर्वहण किया है। इस पुस्तक की रचना में अनेक विद्वानों द्वारा रचित कई पुस्तकों की भूमिका अपरिमित है। मैं सबका हृदय से आभारी हूँ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह कृति आध्यात्मिक अनुशीलन में संलग्न गृहस्थजनों को आनन्दमय जीवन जीनें के लिए मार्गदर्शन करेगी ।

हृषीकेश मिश्र
प्रारंभ महाशिवरात्रि (२६.०२.२०२५),
समापन (०८.०५.२०२५)

चरैवेति-चरैवेति

आत्मिक आकांक्षा

हृदय–अलंकरणम् नामक यह कृति आज के उलझे हुए जीवनों के बीच, शांति पथ के अन्वेषण में निकली एक संवेदना की लहर है। प्रकृति–पुरुष के एकत्व में जब ज्ञान और विवेक का समरस अथवा संतुलित मेल होता है, तो मानव जीवन को केवल गति ही नही बल्कि दिशा भी प्राप्त हो जाती है। यही गति और दिशा मानव जीवन को पूर्णता की ओर अग्रसर करती है।

*योग–विज्ञान के अनुसार, जब सक्रिय कुण्डलिनी ऊर्जा अनाहत चक्र का भेदन करती है, तब हृदय प्रेम, करुणा और माधुर्य से आप्लावित हो उठता है। चूँकि अनाहत चक्र हृदय के समीप स्थित होता है, अतः भारतीय मनीषा में विवाह को दो हृदयों का पावन संगम माना गया है। यह संगम तभी वास्तव में आनंदमय हो सकता है जब दोनों हृदय सनातन प्रज्ञा से अलंकृत एवं उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण हों। इस प्रकार,''**हृदय–अलंकरणम्''** शीर्षक अपने आप में इस ग्रंथ के शुभ उद्देश्य को सारगर्भित रूप की अभिव्यक्ति है।*

आज के युवाओं के लिए आवश्यक है कि :
युवा केवल करियर की दौड़ में न भागें, बल्कि ठहरें... सोचें... और जानें कि आनन्दमय जीवन कैसा होता है।

आज, जहाँ शिक्षा केवल अंक और आंकड़ों की प्रतिस्पर्धा बन चुकी है, वहाँ इस ग्रंथ की भूमिका और भी प्रासंगिक हो जाती है। अतः युवाओं के लिए केवल आधुनिक शिक्षा ही नहीं, अपितु सनातन मार्गदर्शन भी समान रूप से आवश्यक है, जिससे वे जीवन में संतुलन और आत्मिक आनंद प्राप्त कर सकें। इसी उच्च उद्देश्य से प्रेरित यह लघु–पुस्तिका, पारिवारिक जीवन की दिव्यता को दर्शाते हुए भारतीय ऋषियों द्वारा प्रदत्त ज्ञान का संयोजन है, जो न केवल वैवाहिक अथवा गृहस्थ जीवन को पावन बनाता है, अपितु उसे आत्मिक उन्नयन का माध्यम भी बनाता है जिससे जीवन में पूर्णता प्राप्त हो सके।

मेरी आत्मिक आकांक्षा है कि सनातन ज्ञान से ओत–प्रोत यह पुस्तक प्रत्येक पाठक के जीवन में प्रेम, शांति और विकास का सनातन मार्ग प्रशस्त करे।

प० राधाकान्त मिश्र

प्रेमालोक

*किसी भी मानव सभ्यता की समृद्धि और उत्कर्ष का मूल, उसमें निहित सांस्कृतिक मूल्य और नैतिक आधार को माना जाता है। सनातन संस्कृति में स्पष्ट कहा गया है–**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता** । अर्थात् जहाँ नारी का सम्मान अथवा पूजन होता है, वहाँ देवत्व का वास होता है ; जहाँ देवत्व का वास होता है, वहाँ स्वाभाविक रूप से सुख, समृद्धि, शांति और निरंतर प्रगति का वरण होता है।*

दुर्भाग्यवश, अनेक सभ्यताओं में नारी को मात्र एक भौतिक वस्तु मानने की प्रवृत्ति रही है।मेरे विचार में इसका मूल कारण मानव–संबंध में बढ़े हुये आसक्ति से आपसी प्रेम का प्रतिस्थापित हो जाना है।

भारत में पुरुष–महिला संबंधों में असंतुलन, अत्यधिक दमन और अनेक प्रकार की मानसिक एवं शारीरिक हिंसा इस प्रतिस्थापन के प्रत्यक्ष परिणाम हैं। अब समय आ गया है कि हम सनातन परंपरा में निहित उद्देश्यों को पुनरावलोकन करें और उनके गूढ़ तत्वों को अपने व्यवहारिक जीवन में शामिल करें, ताकि जीवन का वास्तविक आनंद प्राप्त हो सके।

हर धार्मिक आस्था के भीतर कोई न कोई गूढ़ उद्देश्य निहित होता हीं है, परन्तु काल के प्रवाह में यह उद्देश्य गौण हो सकती है अगर उसमें निहित गूढ़ ज्ञान की पुनरावृत्ति न हो। कतिपय कारणों से लोग अपने–अपने दृष्टिकोण से सांस्कृतिक परंपराओं की व्याख्या करते रहतें हैं, जिससे वे परंपराएं अपने गूढ़ धार्मिक उद्देश्य से भटककर रूढ़िवादी परंम्परायों का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। आज के सभ्य सनातन समाज में विवाह–संस्कार भी इसी प्रतिस्थापन का शिकार हो गया है। विभिन्न सामाजिक,एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से विवाह संस्कार एक जटिल प्रक्रिया का स्वरूप धारण कर चुका है।

''हृदय–अलंकरणम्''नामक इस पुस्तक में उन विषयों को समायोजित किया गया है, जिन्हें अपनाकर आसक्ति को प्रेम से प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि इस पुस्तक में व्याप्त प्रेमालोक समाज के हर व्यक्ति के अन्तःकरण तक पहुँचाकर, सबके लिए प्रेम, शांति, समरसता और निरंतर विकास का पथ प्रशस्त करे।

जयमन्ति देवी

साधुवाद

*महर्षि पाणिनि द्वारा **'शिक्षा संहिता'** नामक ग्रन्थ में ज्योतिषशास्त्र को वेदपुरुष का अयन आधारित चक्षु कहा गया है– **'ज्योतिषां अयनं चक्षुः'** (शिक्षा संहिता –४१) "अयन आधारित चक्षु" अर्थात् "अज्ञान के अंधकार में वस्तुतः देख लेने" का साधन कहा गया है। अतः ज्योतिषशास्त्र को ज्ञान और अज्ञान आधारित लोक–जीवन में उभयरूप अवस्था में उपयोगी माना गया है , तथा सुखमय सांसारिक जीवन हेतु हितकारी जाना गया है।*

आदरणीय श्री हृषीकेश मिश्र की नवीन पुस्तक "हृदय–अलंकरम्" का पूर्वावलोकन करने का अवसर प्राप्त हुआ। यह कृति 'ज्योतिष शास्त्र' की प्राचीन मान्यताओं पर आधारित होकर वर्तमान परिस्थिति में युगानुकूल आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान करने का कार्य करती है; अतः यह सुखमय दाम्पत्य जीवन हेतु उपयोगी हो गयी है। यह विचारपूर्ण कृति कुल तीन भाग में विभाजित होकर – कुल नौ पाठ धारण करती है ।

***प्रथम खण्ड गृहस्थ जीवन के लिए** सनातन धर्म सिद्धान्त की आधारभूत जानकारी प्रदान करता है। पुस्तक का यह खण्ड ,विवाह मुहूर्त निर्धारण ,वर और वधु की जन्म–पत्रिका के अष्टकूट मिलान , मांगलिक दोष विवेचना को अपनाकर सामान्य जीवन के अनुशासन के साथ–साथ ज्योतिषशास्त्र से सम्बन्धित उपयोगी आधारभूत जानकारी प्रदान करता हैं। अतः सामान्य गृहस्थ के साथ–साथ ज्योतिषशास्त्र के अध्येताओं के लिये भी यह भाग अति उपयोगी हो गया है।*

*द्वितीय भाग **" विमर्श खण्ड "** में ' सनातन धर्म के स्वरुप पर वैदिक दर्शन से लेकर आधुनिक दर्शन के माध्यम से विमर्श प्रगट किया गया है। पुस्तक का यह भाग गृहस्थ जीवन में पूर्णता हेतु आत्मिक उन्नयन का मार्ग प्रशस्त करता है।*

*तृतीय **'आचरण खण्ड'** में पुरुषार्थ एवं आश्रम , **सनातन संस्कार ,**सनातन गृहस्थ दिनचर्या एवं जीवनचर्या , आचरण आधारित कुल तीन पाठ समाहित हैं। इस लघु पुस्तिका में चारों ही पुरुषार्थ के उपार्जन पर भी व्यावहारिक नवीन दृष्टि से विचार किया गया है। अतः यह कृति सबके लिये पठनीय और उपयोगी हो गयी है।*

*वेदवाणी में भगवती श्रुति द्वारा नव विवाहित दम्पति (वर–वधू) के प्रति, **'सूर्या विवाह सूक्त'** में अनुशासन किया गया है कि–*

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।

क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभि–र्मोदमानौ स्वे गृहे ॥ (ऋग्वेद १०.८५.४२)

अर्थात् –"(नवदम्पति के प्रति अनुशासन) तुम दोनों यही पर इस जगत् में सदैव निवास करो । कभी पृथक् मत होओ। इस संसार (वन) में रहकर सम्पूर्ण आयु का भोग करो और अपने घर में पुत्र–पौत्र आदि के साथ क्रीड़ा करते हुए आनन्दित होकर निवास करो।"

इस प्रकार सुखमय सांसारिक गृहस्थ जीवन को लेकर यह लघु पुस्तिका बहुआयामी एवं "गागर में सागर" लोकोक्ति को चरितार्थ करने वाली हो गई है। आज सामाजिक जीवन में जबकि 'विवाह संस्था' झकझोले ले रही या लड़खड़ा रही है; ऐसे में यह कृति अवश्य ही सामाजिक जीवन में व्यावहारिकता के धरातल पर सुदृढ़ता लाने का कार्य करेगी।

इस विचारपूर्ण कृति के लिये मैं श्री मिश्र के प्रति साधुवाद अर्पित करता हूँ तथा परम प्रभु से यह कामना करता हूँ कि श्रीमिश्र की लेखनी सदैव सगर्भा बनीं रहकर नव विचारपुञ्ज का सृजन करती रहे । इति शम् ।

उज्जैन, २६ जून २०२५.

शुभेच्छू

गिरीश चौबे "गोवर्द्धन"
द्वारा– 'अक्षर अनुसंधान एवं ब्रह्म योग–साधना केन्द्र',
(अनुपम अमृत विद्यापीठ)
३७, क्षपणक मार्ग, दशहरा मैदान,
उज्जैन (मध्यप्रदेश) पिन–४५६१०

श्लाघा

*हमारे शास्त्रों में कहा गया है "**काव्य–शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्** " अर्थात् विद्वान जन काव्य और शास्त्र के चिंतन–मनन में हीं अपना जीवन को सार्थक रूप में व्यतीत करते हैं। इसी सार्थक चिंतन से जन्म लेता है–प्रज्ञारूपी नवनीत,जो जनमानस को प्रमुदित करता है। **हृदय–अलंकरणम्** भी ऐसी ही एक सनातन प्रज्ञामृतहै , जिसका रसास्वादन कर प्रबुद्ध गृहस्थजन विशिष्ट लाभ अर्जित करेंगे।*

प्रशस्त ज्ञान से परिपूर्ण इस पुस्तिका में आध्यात्मिक , व्यवहारिक तथा खगोलीय गूढ़ रहस्यों को बड़े ही सहज, सरस और सुलभ ढंग से गृहस्थ जीवन के लिए अभिव्यक्त किया गया है , जो सचमुच ही "गागर में सागर" की उक्ति को चरितार्थ करता है।

सम्पूर्ण पुस्तक के अनुशीलन के उपरांत यह स्पष्टतया कहा जा सकता है कि हृदय–अलंकरणम् केवल भावुकता की कोरी कल्पना नहीं , बल्कि अनुभव–सिद्ध चिंतन का एक सशक्त, सुसंगत और सजीव–संवेदना का समावेश है।

हृषीकेष मिश्र जी ने अपने सार्थक एवं सकारात्मक विचारों को साधना की भावना से सजाया है, एवं उन्हें व्यावहारिक जीवन की कसौटी पर खरा उतारने का हरसंभव प्रयास किया है।

उनका यह श्रम, भाव, एवं समर्पण निःसंदेह अति श्लाघ्य है।

आचार्य दीनानाथ पाठक
भूतपूर्व औ०कैप्टन/धर्मशिक्षक
भारतीयसेना

समीक्षा

हृदय–अलंकरणम् केवल एक पुस्तक नहीं, बल्कि एक आत्म–चिंतन और सांस्कृतिक जागरण का आह्वान है। यह आज के भौतिकतावादी युग में खोते जा रहे मानविक, सामाजिक और आत्मिक मूल्यों की पुनर्स्थापना की गूढ़ चर्चा करती है। इस पुस्तक की मुख्य विशेषतायें निम्न है :

1. संरचनाः इस पुस्तक को तीन प्रमुख खंडों में विभाजित किया गया हैः

- सिद्धान्त खंड : विवाह संस्कार की व्यवहारिक विवेचना के साथ–साथ विवाह में ज्योतिष शास्त्र की प्रासंगिकता ।
- विमर्श खंडःधार्मिक, विचारात्मक और दार्शनिक आधार।
- आचरण खंडः आध्यात्मिक साधना, संयम और जीवनशैली।

2. भाषा शैली : संस्कृतनिष्ठ, भावपूर्ण और गंभीर भाषा। कहीं–कही शास्त्रीय श्लोकों और ग्रंथाधारित उद्धरण,पुस्तक को प्रामाणिकता प्रदान करती है।

3. सनातन विवाह–संस्कार केवल आसक्ति आधारित न होकर , आध्यात्मिक प्रेम आधारित है । जिसके अनुसार वर–वधु आध्यात्मिक व भौतिक विकास पथ में सहयात्री है।

4. आधुनिकता की आलोचनाः पाश्चात्यकरण, उपभोक्तावाद और अराजक स्वतंत्रता पर गंभीर आलोचनात्मक दृष्टिकोण। यह मान्यता कि शिक्षा और विज्ञान केवल शरीर की आवश्यकताओं तक सीमित होकर आत्मा को उपेक्षित कर रहे हैं।

5. सकारात्मक दृष्टिकोणः लेखक केवल समस्याएँ नहीं बताते , अपितु सनातन समाधान भी प्रस्तुत करते हैं – जैसे संयमित जीवन, सांस्कृतिक विवाह, व्रत–नियम, और लोकहितकारी शिक्षा की आवश्यकता।

मेंरे विचार में ह्रदय–अलंकरणम् नामक इस पुस्तक का लक्ष्य गृहस्थ को आत्म–संवाद और आत्म–मंथन की ओर प्रेरित करना है। यह पुस्तक युवाओं को अपने सांस्कृतिक मूल्यों की ओर लौटने का आह्वान करती है।

पीयूष कुमार मिश्र
PGT (Chemistry),
केन्द्रीय विद्यालय संगठन

समालोचना

हृदय–अलंकरणम् एक ऐसी विलक्षण पुस्तक है , जो सनातन धर्म की गहराइयों, भावनाओं की सूक्ष्मता, और आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन को एक सूत्र में पिरोती है। यह कृति मानव जीवन के मूल संस्कारों और संवेदनाओं को सहज, सजीव एवं प्रभावी भाषा में प्रस्तुत करती है।

इस पुस्तक की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें विवाह संस्कार जैसे गूढ़ विषय को धार्मिक, ज्योतिषीय, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समग्रता में समझाया गया है। लेखक की लेखनी में सहजता और गहराई का अद्भुत संतुलन है, क्योंकि उन्होंने न तो शब्दाडंबर का सहारा लिया है, और न ही पाठकों को दार्शनिक जटिलताओं में उलझाया है। जिससे पाठक भावनात्मक रूप से जुड़कर आत्मचिंतन के पथ की ओर प्रवृत्त होते हैं।

हृदय–अलंकरणम् न केवल सनातन परंपराओं का विमर्श है, बल्कि आधुनिक युवाओं के लिए वह सेतु है जो उन्हें इस आधुनिकता के आडम्बर में सनातन की वास्तविकताओं से परिचित कराता है। यह पुस्तक एक साहित्यिक कृति से अधिक,एक आंतरिक अनुभूति और सामाजिक–वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उत्कृष्ट समन्वय है।

इस अद्भुत बहुआयामी रचना हेतु मैं अपने हृदय की गहराइयों से अपने अग्रज श्री हृषीकेश मिश्र जी काअभिनन्दन करता हूँ।

डा० बासुकीनाथ मिश्र
सहायक प्राध्यापक (ब०)
राजकीय अभियंत्रण महाविद्यालय शेखपुरा (बिहार)

प्रतिसाद

हृदय–अलंकरणम्नामक पुस्तक धर्म और विज्ञान के बीच के उस सुंदर सेतु के भाँति है, जो परंपरा से आधुनिकता को जोड़ता है। इसमें हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रंथों " जैसे वेद, उपनिषद और मनुस्मृति आदि " में वैवाहिक सिद्धांतों की मौलिक विवेचना की गई है , जो केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक सोच से भी गहरे भाव के साथ जुड़ती है।

*इसमें यह स्पष्ट किया गया है , **विवाह–संस्कार मात्र सामाजिक रस्म नहीं, बल्कि एक गहरा मानसिक और आत्मिक रुप से जुड़नें का सनातन माध्यम है।** पुस्तक इस बात को खूबसूरती से समझाती है कि कैसे 'सात फेरे' जैसे वैवाहिक संस्कार भावनात्मक और न्यूरोसाइंटिफिक दृष्टिकोण से भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। धार्मिक भाषा में लिखे गए शास्त्रीय विचारों को लेखक ने आधुनिक मनोविज्ञान और न्यूरोसाइंस की रोशनी में इस तरह से प्रस्तुत किया है कि पाठक उसे न केवल समझ सके, बल्कि अपने जीवन में उसका सार भी उतार सके। संयम, संवाद, समझ और समर्पण जैसे पहलुओं को व्यवहारिक रूप में प्रस्तुत कर, यह गृहस्थ जीवन को और भी अधिक अर्थपूर्ण बनाने में सहायक है।*

इसकी भाषा सरल है, पर प्रभावशाली। शास्त्रों के उद्धरण और आज के शोधों का संतुलन इसे खास बनाता है। यह पुस्तक उनके लिए एक मार्गदर्शक की तरह है जो अपने वैवाहिक जीवन को केवल सामाजिक ढांचे में नहीं, बल्कि एक गहरे, संतुलित और जागरूक आध्यात्मिक संबंध के रूप में जीना चाहते हैं , जहाँ श्रद्धा और विवेक एक साथ चलें।

वैद्यनाथ मिश्र
प्रधानाध्यापक
श्रीपूर हाट हाईस्कूल(पश्चिम बंगाल)

विषय अनुक्रम

सिद्धान्त खण्ड.. 1

—:०१ :— गृहस्थ जीवनद्वार विवाह संस्कार 2

—:०2:— सनातन विवाह मुहूर्त.. 12

—:०4:— अष्टकूट मिलान.. 21

—:०4:— विवाह में मंगल दोष 27

—:०5:— गूढ़ ज्योतिष.. 34

विमर्श खण्ड 38

—:०6:— वैदिक धर्म एक जीवन पद्धति 39

आचरण खण्ड.. 62

—:०7:— पुरुषार्थ और आश्रम.. 63

—:०8 :— सनातन संस्कार.. 72

—:०9 :— सनातन गृहस्थ दिनचर्या एवं जीवनचर्या.. 77

सिद्धान्त खण्ड

वैदिक धर्म को हीं सनातन धर्म कहतें हैं ।

—:०१ :—

गृहस्थ जीवनद्वार – सनातन विवाह संस्कार

भारतवर्ष ऋषियों की भूमि रही है। सृष्टि के सतत् समुचित एवं संस्कारित विकास के लिए भारतीय ऋषियों ने शुभ विवाह संस्कार की परिकल्पना की , जिसके उपरांत वर–वधु गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं। गृहस्थ आश्रम में हीं मनुष्य के पास सर्वाधिक क्षमता होती है, जिसका सकारात्मक उपयोग मनुष्य जीवन को सार्थक बनाता है ।

1.1. शुभ–विवाह संस्कार क्या है ?

सनातन धर्म के मान्यताओं के अनुसार मनुष्य का जन्म चार प्रकार के पुरूषार्थो को प्राप्त करने के लिए होता है। इनका लिंग ,जाति या वर्ण इत्यादि से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

1. *काम :– भौतिक सुख के कामना की पूर्ति ।*
2. *अर्थ :– भौतिक सुख हेतु अर्थोपार्जन/धनोपार्जन।*
3. *धर्म :– चैतन्य कर्म ।*
4. *मोक्षः– आत्मबोध।*

सनातन धर्म के अनुसार मनुष्य के सक्रिय जीवनकाल को १०० वर्ष का माना जाता है। सनातन धर्म के अनुसार जीवन काल मे चार पुरूषार्थो के प्राप्ति हेतु चार आश्रम का अनुशासन–व्यवस्था प्रगट की गई है :

1. *ब्रह्मचर्य आश्रमः–जन्म से 25 वर्ष तक का आयुखण्ड।*
2. *गृहस्थ आश्रमः–25 – 50 वर्ष तक का आयुखण्ड।*
3. *वानप्रस्थ आश्रमः–50 –75 वर्ष तक का आयुखण्ड।*
4. *सन्यास आश्रम :–75–100 वर्ष तक का आयुखण्ड।*

वायुपुराण के अनुसार :

धर्मार्थ काम सम्प्राप्तिः परत्रेह च शोभनम् ।

एष तूद्येशतः प्रोक्तो गृहस्थाश्रम उतमः।

अर्थात धर्म–अर्थ और काम तीनों प्रकार के पुरूषार्थ प्राप्त करके जीवन के उद्देश्य प्राप्त करने के कारण गृहस्थ आश्रम को अति उत्तम् माना जाता है। इस आश्रम में प्रवेश का सबसे आवश्यक शर्त है – शुभ विवाह संस्कार का होना। क्योंकि धर्म और अर्थ की प्राप्ति कोई भी मानव अकेले कर सकता है, परन्तु संततिवृद्धि अथवा नवीन सृष्टी के लिए प्रकृति–पुरुष का संयोग अनिवार्य है। इसलिए सनातन विवाह संस्कार को गृहस्थ आश्रम का द्वार कहा जाता है। गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश के बाद वेद आदेश इस प्रकार है :

शतहस्त समाहार सहस्त्रहस्त संकिरा ।

कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ।। *अथर्ववेद (3.24.25)*

अर्थात शतहस्त अथवा अपनी पूर्णक्षमता से धनार्जन कर एवं सहस्त्रहस्त अथवा मुक्तहस्त धन वितरण करना चाहिए। इस प्रकार के आचरण से गृहस्थ देवराज के समान समृद्धिवान हो जाता है। अतः मनुष्य को अपनी क्षमता के अनुसार धनार्जन एवं दान दोनो करना वेदोक्त अनुशासन है।

1.2. गृहस्थ आश्रम और अलौकिक प्रेम :

भौतिक जीवन में साधारणतः पति–पत्नी के बीच प्रेम को शारीरिक वासना का प्रतिफल हीं समझा जाता है। परन्तु भारतीय सनातन दर्शन के अनुसार जीव मात्र शरीर ही नहीं है , बल्कि यह आत्मा का प्रकट रुप है। भारतीय दर्शन के अनुसार पति–पत्नी का प्रेम दो आत्मायों के पुनर्मिलन के उत्साह का प्रतिफल है । पति–पत्नी के बीच का प्रेम केवल भौतिक न होकर अलौकिक है । पति– पत्नी के आसक्ति को अलौकिक प्रेम में प्रविर्तित करना हीं सनातन विवाह संस्कार का मौलिकउद्देश्य है। अलौकिक प्रेम की पहचान है , द्वैत का समाप्त हो जाना , अतः दोनों में से किसी की भी अपनी अलग पहचान का नहीं होना जैसे शरीर और आत्मा का अलग–अलग पहचान संभव नहीं है , अथवा दो नदियों के संगम के बाद दोनों का अलग – अलग पहचान संभव नहीं है ।

यह अक्षरशः सत्य है कि , भौतिक जीवन में विवाह के उपरांत जो सबसे बड़ा परिवर्तन होता है, वह है जिम्मेदारियों का बदल जाना अथवा बढ़ जाना। अपने प्रसिद्ध लेख जीवन और शिक्षण में आचार्य विनोबा भावे इस प्रकार के परिवर्तन को ***हनुमान कूद*** *की संज्ञा प्रदान की है।*

सनातन विवाह पद्धति में वर्णित सप्तपदी इसी दिशा में ऋषियों द्वारा उठाया गया एक प्रभावी कदम है। जिसे हम भारतीय सनातन संस्कृति में नैतिक मूल्यों के विकास के लिये मील का पत्थर कह सकते हैं ।

सनातन विवाह संस्कार के लक्ष्य प्राप्ति हेतु सप्त वचन(अनुशासन) :-

1. ***आध्यात्मिक स्वअनुशासन***

तीर्थ–व्रतोद्यापन यज्ञकर्म मया सहैव प्रियवयं कुर्याः –*आप तीर्थ–व्रत एवं धार्मिक कार्य में सदैव मुझे अपना भागीदार बनायेंगे।*

2. पारिवारिक स्वअनुशासन

पुज्यो यथा स्वौ पितरौ ममापि तथेशभक्तो निजकर्म कुर्याः – *आप मेरे अभिभावको का भी सम्मान अपने अभिभावकों के समान ही करेंगे।*

3. ***शारीरिक स्वअनुशासन***

जीवनम् अवस्थात्रये पालनां कुर्यात –*आप जीवन के तीनों अवस्था (युवावस्था, प्रौढ़ावस्था ,वृद्धावस्था) में मेरा पालन करेंगे।*

4. सामाजिक स्वअनुशासन

कुटुम्बसंपालनसर्वकार्य कर्तुं प्रतिज्ञां यदि कान्त कुर्याः – *अभी तक आप परिवार के पालन की चिन्ता से मुक्त थे , परन्तु विवाहोपरान्त आपकी पारिवारिक जिम्मेदारी बढ़/बदल जायेगी , जिसका आप सहर्ष वहन करेंगे।*

5. आर्थिक स्वअनुशासन

स्वसद्यकार्ये व्यहारकर्मण्ये व्यये मामापि मन्त्रयेथा – *अपने घर के कार्य हेतु या किसी अन्य कार्य हेतु व्यय के लिये आप मेरी भी सलाह लेंगे ।*

6. व्यवहारिक स्वअनुशासन

न मेपमानमं सविधे सखीना द्यूतं न वा दुर्व्यसनं भंजश्वेत – *अगर मैं अपनी सहेलियों के बीच या किसी समारोह में हूँ , तो आप मेरा किसी भी कारण से अपमान नहीं करेंगें । साथ ही साथ आप जुआ एवं नशा आदि दुर्व्यसनों से दूर रहेंगे ।*

7. चारित्रिक स्वअनुशासन

परस्त्रियं मातुसमं समीक्ष्य स्नेहं सदा चेन्मयि कान्त कूर्या – *आप पराई स्त्री को माता के समान मानेंगे , तथा कभी भी तीसरे व्यक्ति को पति–पत्नी के प्रेम के बीच नहीं लायेंगे।*

अगर इन सप्त स्वअनुशासनों को पालन किया जाये तो पति–पत्नी के बीच का अलौकिक प्रेम अथवा आत्मीय प्रेम प्रकट हो जाता है । जिसके उपरांत मानव जीवन के लक्ष्य (धर्म , अर्थ , काम) की प्राप्ति में दोनों एक दुसरे का पूर्ण सहयोग करतें हैं ।

1.3.अलौकिक प्रेम के प्रतिमुर्ति माता राधारानी एवं भगवान श्री कृष्ण

माता राधारानी का वर्णन श्री कृष्ण लीला से सम्बंधित धार्मिक ग्रन्थों जैसे श्रीमद् भगवत् महापुराण, महाभारत, हरिवंश महापुराण , विष्णुपुराण इत्यादि में कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। श्रीमद् भगवत् महापुराण, और महाभारत में श्री कृष्ण की सोलह हजार आठ रानियाँ बताई गई है। जबकि हरिवंश महापुराण और, विष्णुपुराण में श्री कृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ बताई गई है। जिनमें माता राधारानी के नाम का वर्णन कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। गर्ग संहिता (महर्षि गर्ग श्री कृष्ण के कुलगुरु थे) के अनुसार श्री कृष्ण और राधारानी के बीच विवाह सम्पन्न हुआ था।

कुछ विद्वान राधा शब्द को आराध्या शब्द से उत्त्पन्न मानतें हैं, उनका मानना है, कि माता राधारानी , श्री कृष्ण की आराध्या है, एवं श्री कृष्ण से अलग माता राधारानी का कोई अस्तित्व नहीं है ।

कुछ प्रसिद्ध कथाकार माता राधारानी और भगवान श्री कृष्ण की कहानी को आनन्दप्रद बनाने के लिए माता राधारानी को भगवान श्री कृष्ण की प्रेमिका बताते हैं। माता राधारानी और भगवान श्री कृष्ण के सम्बन्ध के बारे में अनेक विरोधाभाषी जनश्रुतियाँ हैं। इतने विरोधाभाषों के बावजूद इस बात पर प्रत्येक भक्त सहमत है कि, माता राधारानी और भगवान श्री कृष्ण के बीच अलौकिक प्रेम था। ***अलौकिक प्रेम द्वैत को समाप्त कर देता है*** *। माता राधारानी और भगवान श्री कृष्ण का शरीर अलग–अलग हो सकता है। परन्तु अलौकिक प्रेम के कारण दोनों को अलग–अलग जानना संभव नहीं है ।*

भारतीय सनातन विवाह का उद्देश्य पति–पत्नी के बीच के भौतिक प्रेम को अलौकिक प्रेम में बदलना है ।

1.4. सप्तानुशासन का अनुपालन हेतु प्रतिज्ञाः

उपर्युक्त सप्तानुशासन का पालन से द्वैत समाप्त हो जाता हैं , परन्तु यह तब ही संभव है जब वर और कन्या अपने–अपने कर्तव्यों को पालन करने की प्रतिज्ञा करें । सनातन विवाह संस्कार मे वर और कन्या दोनों के द्वारा कुछ प्रतिज्ञा करने की लोकरीति इस प्रकार है :

वर द्वारा लिया जानेवालाप्रतिज्ञा :

1. ***धर्मपत्नी मिलित्वैव , ह्येकं जीवनमावयोः। अद्यारभ्य यतो में त्वम् अर्द्धांगिनीति घोषिता –****आज से आपको अर्द्धांगिनी घोषित करते हुये मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि , आपके साथ नव जीवन में आपकी देखभाल मैं अपने अंगों की तरह करूँगा।*
2. ***स्वीकरोमि सुखेन त्वां, गृहलक्ष्मीमीन्ततः। मन्यित्वा विधास्यामि, सुकार्याणि त्वया सह –*** *आज से मैं आपको गृहलक्ष्मी के रूप में स्वीकार करता हूँ , एवं प्रतिज्ञा करता हूँ कि , अपने जीवन के प्रत्येक निर्णय में आपके परामर्श को महत्व दूँगा ।*
3. ***रूप– स्वास्थ्य, गुणदोषादीन्सर्वतः। रोगज्ञान– विकारांश्च तव विस्मृत्य चेतसः –*** *आपके रूप, स्वास्थ्य, स्वभावगत गुण– दोष एवं अज्ञानजनित विकारों को मैं अपने चित्त में नहीं रखूगाँ। उसके कारण असन्तोष व्यक्त नहीं करूंगाँ एवं स्नेहपूर्वक सुधारने के लिये आत्मीयता बनाये रखूँगा ।*
4. ***सहचरो भविष्यामि , पूर्णस्नेहः प्रदास्यते । सत्यता मम निष्ठा च, यस्याधरं भविष्यति –*** *मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपने वचन का पालन पूरी सत्यनिष्ठा के साथ करूँगा एवं आपसे से मित्रवत् स्नेह रखूँगा ।*
5. ***पवित्रचित्तेन पातिव्रत्य त्वया धृतम । तथैव पालयिष्यामि पत्नीव्रतमहं ध्रुवं –*** *पत्नी के लिए जिस प्रकार पतिव्रत की मर्यादा कही गयी है, उसी दृढ़ता से स्वयं पत्नीव्रत धर्म का पालन करूँगा। चिन्तन और आचरण दोनों से ही पर नारी से वासनात्मक सम्बन्ध नहीं जोडूंगा।*

6. ***गृहस्यार्थव्यवस्थायां मन्त्रयित्वा त्वया सह। सञ्चालनं करिष्यामि गृहस्थोचित. जीवनमं*** *–गृह व्यवस्था में धर्मपत्नी को प्रधानता दूंगा। आमदनी और खर्च का कर्म उसकी सहमति से करने की गृहस्थोचित जीवनचर्या अपनाऊंगा।*

7. ***समृद्धि. सुख. शान्तिनां रक्षणाय तथा तव। व्यवस्थां वै करिष्यामि स्वशक्तिवैभवादिभिः*** *–धर्मपत्नी की सुख. शान्ति तथा प्रगति. सुरक्षा की व्यवस्था करने में अपनी शक्ति और साधन आदि को पूरी ईमानदारी से लगाता रहूँगा।*

8. ***यत्नशीलो भविष्यामि सन्मार्गसेवितुं सदा। आवयोः मतभेदांश्च दोषान्संशोध्य शान्तितः***–*अपनी ओर से मधुर भाषण और श्रेष्ठ व्यवहार बनाये रखने का पूरा.–पूरा प्रयत्न करूँगा। मतभेदों और भूलों का सुधार शान्ति के साथ करूँगा। किसी के सामने पत्नी को तिरस्कृत नहीं करूँगा।*

9. ***भवत्यामसमर्थायां विमुखायाञ्च कर्मणि। विश्वासं सहयोगञ्च मम प्राप्स्यसि त्वं सदा –*** *पत्नी के असमर्थ या अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाने पर भी अपने सहयोग और कर्त्तव्य पालन में रत्ती भर भी कमी नहीं रखूँगा।*

कन्या द्वारा की जानेवाली प्रतिज्ञा :

1. ***स्वजीवनं मेलयित्वा भवतः खलु जीवने। भूत्वा चार्द्धाङ्गिनी नित्यं निवत्स्यामि गृहे सदा –*** *अपने जीवन को पति के साथ संयुक्त रूप से नये जीवन की सृष्टि करूँगी। इस प्रकार घर में हमेशा सच्चे अर्थों में अर्द्धांगिनी बनकर रहूँगी।*

2. ***शिष्टतापूर्वकं सर्वैः परिवारजनैः सह। औदार्येण विधास्यामि व्यवहारं च कोमलम् –*** *पति के परिवार के सभी परिजनों के साथ शिष्टता बरतूँगी , उदारतापूर्वक सेवा करूँगी , तथा मधुर व्यवहार करूँगी।*

3. ***त्यक्त्वालस्यं करिष्यामि गृहकार्ये परिश्रमम् । भर्तुर्हर्षं हि ज्ञास्यामि स्वीयामेव प्रसन्नताम् –*** *आलस्य को छोड़कर परिश्रमपूर्वक सहर्ष गृह कार्य करूँगी। तथा प्रसन्नता के साथ पति के हर्ष के लिये इस समुचित योगदान करूँगी।*

4. ***श्रद्धया पालयिष्यामि धर्मं पातिव्रतं परमं । सर्वदैवानुकूल्येन पत्युरादेशपालिकाः*** *–पति के प्रति श्रद्धा. भाव बनाये रखकर पतिव्रत धर्म का पालन करूँगी एवं सदैव उनके अनुकुल रहकर पति के धर्मोचित आदेश का तत्परता से पालन करूँगी।*

5. ***सुश्रूषणपरा स्वच्छा मधुरं प्रियभाषिणी। प्रतिजाने भविष्यामि सततं सुखदायिनी*** *–सेवापरायण , स्वच्छ, तथा मधुर एवं प्रियभाषिणी , ईर्ष्या, कुढ़न आदि प्रतिज्ञानदोषों से मुक्त रहकर ,सदा प्रसन्नता देने वाली बनकर रहूँगी।*

6. ***मितव्ययेन गार्हस्थ्य. सञ्चालने हि नित्यदा। प्रयतिष्ये च सोत्साहंतवाहमनुगामिनी*** *– फिजूलखर्ची से बचकर मितव्ययितापूर्वक गृहस्थी का संचालन नियमितरूप से करूँगी। उत्साहपूर्वक पति की अनुगामिनी बनने का प्रयास करूँगी।*

7. ***देवस्वरूपो नारीणां भर्त्ता भवति मानवः। मत्वेति त्वां भजिष्यामि नियता जीवनावधिम्*** *– मनुष्य योनि में नारी के लिए पति देवता का स्वरूप माना जाता है। यह मानकर पति की सेवा करते हुए ,जीवन भर सक्रिय रहूँगी।*

8. ***पूज्यास्तव पितरो ये श्रद्धया परमा हि मे। सेवया तोषयिष्यामि तान्सदा विनयेन च–*** *जो पति के पूज्य और श्रद्धा पात्र हैं ,उन्हें सेवा द्वारा और विनय द्वारा सदैव सन्तुष्ट रखूँगी।*

9. ***विकासाय सुसंस्कारैः सूत्रैः सद्भाववर्द्धिभिः। परिवारसदस्यानां कौशलं विकसाम्यहम्*** *–परिवार के सदस्यों में सुसंस्कारों के विकास तथा उन्हें सद्भावना के सूत्रों में बाँधे रहने का कौशल अपने अन्दर विकसित करूँगी।*

1.5. आध्यात्म – मार्ग में नर और नारी :–

सनातन सिद्धान्त के अनुसार स्त्री और पुरुष दोनो का जन्म मुक्ति प्राप्त करने के लिये हीं होता है । कृष्णलीला की कथाओं के अनुसार ,कई विष्णुभक्त ऋषि–मुनियों ने मुक्ति पाने के लिए अथवा श्री विष्णु के अवतार श्री कृष्ण के साथ एकाकार होने के लिये गोपिकाओं का शरीर धारण करके गोकुल में जन्म लिए थे । अतः धर्म – मार्ग में नर–नारी में कोई अन्तर नहीं है ।

आत्मा स्त्री–पुरुष का अलग–अलग प्रकार का नहीं होता है । परन्तु स्त्री प्रकृति स्वरुपा मानी जाती है। व्यवहारिक रुप से प्रकृति को हमेशा संरक्षण की आवश्यकता होती है । इसी दृष्टिकोण से कुछ सनातन धर्मग्रन्थों में कन्या के पिता, भाई ,पति तथा उसके पुत्र को उसका संरक्षक माना गया है।

कतिपय कारणों से कन्या गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती थी । इसलिए कुछ ग्रन्थों में कहा गया है कि विवाह के पूर्व कन्या का पिता उसका गुरु होता है । तथा विवाहापरांत कन्या का पति गुरुतुल्य होता है। सनातन धर्म में गुरु को देवतुल्य माना जाता है । इस दृष्टिकोण से कई ग्रन्थों ने पति को स्त्री के लिए देवतुल्य माना है ।

परन्तु विवाह के समय प्रचलित सप्तपदी के श्लोकों के अनुसार दोनो को मित्रवत् माना गया है , तथा पत्नी को पति का अर्द्धांगनी अथवा सहगामिनि की संज्ञा प्रदान की गई है ।

1.5. आधुनिक परिवेश मे पति–पत्नी सम्बन्धः–

आज के बदली हुई परिस्थितियों में कतिपय कारणो से कई बार पति–पत्नी को एक दुसरे से दूर रहना पड़ता है । इस परिस्थिति को भी पौराणिक कथायों के माध्यम से राधा–कृष्ण के अलौकिक प्रेम को बहुत हीं रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । भारतीय ऋषियों ने साधारण लोगों को इस परिस्थिति में सप्तपदी के मूल भावना को व्यक्त करते हुये कहा हैः

सप्तपदी भूत्वा सखे सप्तपदं कृत्वा त्वं मम् सख्यं सखित्वं ते अस्तु ।

मयि तवं संप्रतिज्ञातो असि ममैकायनं सह जीवनं च ।।

अर्थात हम दोनों ने साथ –साथ कदम चलकर यह यह व्रत लेतें हैं कि हम जीवन भर एक दूसरे के मित्र के समान साथ निभायेगें। मित्र का सम्बन्ध में विश्वास की मजबूत कड़ी होती है । एक दुसरे पर पूर्ण विश्वास और एक दुसरे के लिये सम्पूर्ण समर्पण रुपी स्नेहक जीवन पथ को आनन्दमय राजपथ बना देता है । जिससें जीवनयात्रा आनन्दमय हो जाती है।

1.5. गृहस्थ संजीवनी :–

भारतीय ऋषियों द्वारा पौराणिक कथाओं , एवं वैदिक रीतियों के माध्यम से सुखमय गृहस्थ जीवन निर्वाह हेतु अनेक दृष्टांत देकर सर्वकालिक सिद्धान्त

का प्रतिपादन किया है । परन्तु आजकल पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण पति–पत्नी के बीच का अलौकिक प्रेम अवसाद मे परिवर्तित होता जा रहा है । इस अवसाद का मूल कारण एक दुसरे के साथ गुणात्मक समय व्यतीत नहीं कर पाना है । मनोचिकित्सकों द्वारा सुझाया गया एक कारगर उपाय है एक दुसरे के साथ विशेष ढ़ग से गुणात्मक समय व्यतीत करना । इस प्रक्रिया को हम गृहस्थ संजीवनी कह सकते हैं । जो इस प्रकार है :

गृहस्थ संजीवनी मंत्र

एक प्रहर आधी प्रहर ,आधी में पुनि आधी।

पति–पत्नी संवाद हरे सकल हीं भौतिक व्याधि।।

एक प्रहर में तीन घंटे होतें हैं । तीन घंटे के आधा का आधा 90 मिनट होता है , तथा 90 मिनट का आधा 45 मिनट होता है , इस 45 मिनट को तीन भागों में बॉटने पर एक भाग 15 मिनट का होता है । पति–पत्नी को कम से कम इस 45 मिनट का उपयोग सकारात्मक संवाद कि लिये बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के इस प्रकार करना चाहिए:

1. विहारः– प्रत्येक दिन अपनी सुविधा के अनुसार दोनों को साथ–साथ कम से कम 15 मिनट धूमना चाहिये। इस गुणात्मक समय में सामान्य बातें हीं मित्रवत् करनी चाहिए , इस समय कोई गम्भीर बात करना उचित नहीं है।

2. आहार :– प्रत्येक दिन अपनी सुविधा के अनुसार दोनों को साथ–साथ कम से कम 15 मिनट भोजन पर देना चाहिये । इस समय कोई भोजन एवं स्वास्थ्य सम्बन्धित बातचीत हीं करनी चाहिये, कोई गंभीर विषय पर बात करना उचित नहीं है।

3. विचार :– प्रत्येक दिन अपनी सुविधा के अनुसार एक दुसरे के भावना का आदर करते हुये कम से कम 15 मिनट दैनिक समस्यायों के समाधान के विचार एवं नुतन योजना बनाने पर अवश्य देना चाहिये। इस समय हीं विवाद का सर्वाधिक संभावना होती है । परन्तु समस्याओं एवं संभावित समाधानों को कागज पर लिख लेने से वैचारिक स्पष्टता विवाद सं वचा लेती है। एक बात का ध्यान देना आवश्यक है कि पति–पत्नी दोनों को कुछ गुणात्मक समय स्वयं लिये भी निकालकर स्वयं से संवाद भी करना चाहिये। अन्यथा संवाद विवाद में बदलते देर नहीं लगती है ।

वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार हृदय का धड़कन भावना से बहुत अधिक प्रभावित होती है । पति–पत्नी के आपसी प्रेम से हृदय की धड़कन लयबद्ध रहती है , जिससे दोनों का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है । विपरीत स्थिति में शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है । पति–पत्नी के आपसी प्रेम को हृदय– अलंकरणम् कहतें है।

उपसंहारः– *मानव जीवन में सृष्टि के नियम के साथ लयबद्ध होकर जीवन जीने के लिए सनातन धर्म में षोड़ष संस्कार को बहुत महत्व दिया जाता है , तथा इन्हे धार्मिक उत्सव के रुप मे मनाया जाता है।*

इस अध्याय में विवाह संस्कार के शुचिता के लिय सनातन उपाय की विवेचना की गई । विवाह संस्कार में शुचिता के साथ शुभता का ध्यान रखना भी महत्वपूर्ण है, तथा इसकी शुभता को ध्यान में रखकर विवाह के निर्णय में ज्योतिष शास्त्र को बहुत अधिक प्रमुखता दी की जाती है। जिससे भविष्य में भी शुभता एवं शुचिता बनी रहे।

आगे के अध्याय में सनातन धर्म में भविष्य के शुभता एवं शुचिता का ध्यान रखकर विवाह संस्कार के लिए उपयोग में आनेवाले प्रचलित ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है। जिसका प्रयोग प्रायः सनातन धर्म को मानने वाले विवाह हेतु निर्णय लेने में करतें हैं।

इति शुभम्

शिव–पार्वत्याः विवाहो यथा अभूत् तथा मम अपि संजायते ।

—:o2:—

सनातन विवाह मुहूर्त

2.1. ***विवाह के अनुकूलता के लिए भौतिक परीक्षण :***

इस भौतिकवादी काल में लगभग सभी लोग चाहे वे किसी भी धर्म को मानने वाले हो , विवाह हेतू अनुकूलन का आकलन करतें हीं हैं। इसके लिये 8 ***भौतिक*** *पहलुओं पर विचार करने की सलाह दी जाती है। वे पहलू इस प्रकार हैं :*

A-Age *(दोनो की आयु में ज्यादा अन्तर न हो ।)*

B-Beauty *(दोनो के रंग–रुप एक दूसरे के अनुरुप हो ।)*

C-Character *(दोनो के चरित्र उत्तम हो ।)*

D-Devotion *(दोनो के समर्पणमें एकरुपता हो ।)*

E-Education *(शैक्षणिक योग्यता एक दुसरे के अनुकूल हो।)*

F-Family Background *(दोनों के पारिवारिक पृष्ठभूमि अनुरूप हो।)*

G-Gratitude *(दोनों कृतज्ञता के गुण के धनी हो।)*

H-Health *(दोनों का स्वास्थ्य उत्तम हो)*

इन 8 कसौटियों पर आधारित विवाह मात्र आसक्ति– आधारित मानी जाती है। परन्तु सनातन धर्म वैवाहिक आसक्ति को अलौकिक प्रेम में बदलने का प्रयास करता है। इसलिए भारतीय ऋषियों ने भविष्य को ध्यान में रखते हुये ज्योतिष शास्त्र का सहारा लेने की सलाह दी। ज्योतिष शास्त्र में किसी भी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान की सफलता के लिए मुहूर्त को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है ।

किसी भी शुभ कार्य हेतु मुहूर्त वह कालखण्ड़ है , जब प्रकृति ,कार्य सफलता के लिए सब प्रकार से अनुकूल होकर सकारात्मक भूमिका निभाती है।

2.2. विवाह संस्कार में ज्योतिष शास्त्र की प्रासंगिकता :

सनातन ऋषियों ने प्रकृति के साथ लयबद्ध होकर जीवन जीने के लिए मुहूर्त पर बहुत ध्यान रखने की आवश्यकता बताया है। जैसे ब्रह्ममुहूर्त में होनेवाला कार्य अगर दोपहर मे करें तो इसे प्रकृति विरुद्ध आचरण माना जाता है । क्योकि इसमें प्रकृति का सकारात्मक सहयोग नहीं मिल पाता, जिसके कारण ा जिस कार्य से लगाव होना चाहिए उससे उच्चाटन होने की संभावना होती है। अतः ऋषियों ने मौसम, एवं ग्रह नक्षत्र के संयोग के अनुसार किसी भी प्रकार के यज्ञ का पूर्ण लाभके लिये उचित मुर्हूत के निर्णय करने के लिये ज्योतिष शास्त्र का उपयोग करने की सलाह दी है। विवाह संस्कार केवल साधारण उत्सव न होकर यज्ञोत्सव है। अतः इस संस्कार में यज्ञ के समान हीं मुहूर्त का निर्धारण करना चाहिए। ज्योतिष शास्त्र का प्रयोजन बताते हुये मु.चि. पी.धा.टी. पृ.228 पर एक श्लोक इस प्रकार अंकित है :

शुभलक्षण क्रियारम्भः जनिताः पूर्वसम्भवाः।

सम्पदः सर्वलोकानां ज्योतिस्तत्व प्रयोजनम् ।

ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से शुभलक्षणयुक्त मुहूर्त को जाना जा सकता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कोई भी शुभ कर्म शुभफलप्रद तब हीं माना जाता है, जब उस शुभ कर्म का सम्पादन शुभ मुहूर्त में सम्पन्न हो ।

2.3. विवाह संस्कार के लिए मंगलकारी विवाह मुहूर्त विमर्शः

2.3.1.पुराणों में भगवान शिव एवं माता पार्वती का विवाह मुहूर्त का वर्णन इस प्रकार व्यक्त किया गया हैः

शुभे फाल्गुनमासे तु कृष्णपक्षे त्रयोदशी।

निशीथे च महाकाले मुहूर्तः परम्स्मुतः।।

नक्षत्र मृगशीर्श च योगः सिद्धियोगकः।

चन्द्रःवृश्चिकगः स्थित्वा विवाहे शुभदायकः।।

फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि के अर्द्धरात्रि निशीथ काल में जब चन्द्रमा वृश्चिक राशि में था, तथा मृगशिरा नक्षत्र एवं सिद्धयोग के

मंगलकारी उपस्थिति थी । इस अत्यन्त शुभ मुहूर्त में भगवान शिव और माता पार्वती का विवाह सम्पन्न हुआ ।

इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि पौराणिक काल में शुभ विवाह के मुहूर्त का बहुत ध्यान रखा जाता था । आज भी सनातन धर्मावलंबियों में ज्योतिष शास्त्र के अनुसार विवाह मुहूर्त का निर्धारण करने की प्रथा है , परन्तु आज के शिक्षा पद्धति के कारण ज्योतिष शास्त्र के ज्ञानियों की संख्या बहुत कम हो गई है। अतः विवाह मुहूर्त निर्धारण सामान्य रुप से भारतीय पंचांग में अंकित विवाह मुहूर्त के अनुसार कर दिया जाता है । जबकि विवाह मुहूर्त निर्धारण में वर –कन्या के कुण्ड़ली के अनुसार शुभता का विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। शुभ विवाह मुहूर्त निर्धारण हेतु आवश्यक अनुशासन की संक्षिप्त विवेचना आगे प्रस्तुत की गई है ।

2.3.2. ***शुभ मुहूर्त निर्धारण हेतु ज्योतिष शास्त्रानुशासन :***

विवाह जैसे शुभ कर्म के लिये शास्त्रोक्त कई पहलुओं ***(अयण ,मास, तिथि , नक्षत्र, शुक्रास्त , गुरुअस्त , दस दोष , कन्या का गुरुबल , वर का सूर्यबल , तथा दोनों का चन्द्रबल इत्यादि)*** *पर विचार करके शुभ मुहूर्त के बारे में निर्णय लिया जाता है।*

भारतीय पंचांगो में विवाह मुहूर्त प्रायः ***अयण, मास, तिथि , नक्षत्र, शुक्रास्त , गुरुअस्त, एवं दस दोषोंका सुक्ष्म विचार करके*** *अंकित किया जाता है। परन्तु पंचांगों में सामान्य मुहूर्त हीं अंकित होतें हैं। जबकि विवाह की शुभता हेतु वर–कन्या के अनुसार विशिष्ठ मुहूर्त का निर्धारण करना आवश्यक होता है।*

2.3.2.1. विवाह मुहूर्त के मुख्य दस दोष :–*बृहतज्योतिसार के अनुसार*

लतापातोयुतिर्वेणो यामित्रं वाणपंचकम्।

एकार्गलोपग्रहौ च कान्तिसाम्यंशशीनयो।।

दग्धा तिथिश्च विज्ञेया दशदोषाः करग्रहे।

पंचाधिकेषु दोषेषु विवाहं परिवर्जयेत।।

क्रूरविद्धे कुयामित्रे मृत्युबाणे विशेषतः।

सुविद्धभे सुयामित्रे केपीच्छन्ति करग्रहम्।।

लता , पात ,युति , वेध , यामित्र , बाणपंचक , एकार्गल ,उपग्रह , क्रान्तिसाम्य , तथा दग्धतिथि , इन दस दोषों पर विवाह मुहूर्त के निर्धारण में विचार करना चाहिये । इन दस दोषों में से पाँच से अधिक दोष हो तो उस अवस्था में विवाह मुहूर्त का त्याग करना चाहिए । इन दस दोषों में से क्रूरग्रहों से विद्ध नक्षत्र , पापग्रहकृत यामित्र और मृत्युबाण जैसा दोष उपस्थित हो तो यह सर्वथा त्यज्य है।

कई बार उपर्युक्त दोष से लोग भ्रमित होने लगते हैं। क्योकि कई बार इन दोषों के होते हुए भी कई भारतीय पंचांगों में विवाह मुहूर्त अंकित किया होता है। इसका कारण यह है कि ग्रह –नक्षत्रों के कई संयोगों में उपर्युक्त दस दोषों का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता है। इसे दस दोष परिहार कहा जाता है।

2.3.2.2. दस दोष परिहार :

मुहूर्त चिन्तामणी में इन दस दोषों के परिहार के सम्बन्ध में कहा गया है कि

गुरौ लग्नाधिपे शुक्रे सवीर्यो लग्न केन्द्रगे ।

दश दोषा विनश्यन्ति यथाऽग्नौ तूलरशयः ।।

गुरु अगर लग्न के स्वामी के घर में हो या बलवान शुक्र लग्न या केन्द्र में हो तो इन दस दोषों का उसी प्रकार नाश हो जाता है जैसे आग से रुई का ढेर।

अतः बिना गोचर में गुरु के विचार किये केवल दस दोषों के आधार पर कोई मुहूर्त त्यज्य नहीं होता है ।

पीयुष धारा टीका में दस दोषों के सम्बन्ध में कहा गया है कि

शुक्रेण गुरुणावाऽपि संयुतं दृष्टमेव च ।

दशयोग समायुक्तमपि लग्नं शुभावहम् ।।

शुक्र अथवा गुरु से युक्त या दृष्ट लग्न अति शुभ होता है जिससे दस प्रकार के दोष युक्त होने पर भी लग्न के शुभता के कारण दोषों का प्रभाव नही पड़ता है।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि लग्न की शुभता गुरु और शुक्र के गोचर मे स्थिति पर निर्भर करती है । लग्न प्रायः लगभग दो घंटे में बदलता रहता है। इसलिये शुभ लग्न एक दिन रात में कई बार आता है। पंचांग में प्रकाशित तिथि में विवाह शुभ लग्न में ही करना श्रेष्यकर होता है।

संसार में प्रत्येक मनुष्य का उसके जन्म नक्षत्र के अनुसार अपनी एक अलग ज्योतिषीय पहचान होती है, जिसे राशि के नाम से जाना जाता है। अतः वर–कन्या विशेष के लिए पंचांगों में अंकित शुभ विवाह मुहूर्त तब तक उपयोगी नही माना जाता है ।जबतक वर– कन्या के ज्योतिषीय पहचान को विवाह हेतु शुभ मुहूर्त निर्धारण में शामिल नहीं किया जाये।

शुभ विवाह मुहूर्त के निर्धारण के लिये वर –कन्या के जन्म पत्रिका के अनुसार विशिष्ठ मुहूर्त का निर्धारण किया जाता है। आगे वर–कन्या के ज्योतिषीय पहचान के अनुसार मुहूर्त निर्धारण पर विमर्श प्रस्तुत है।

2.3.2.3 वर–कन्या के ज्योतिषीय पहचान के अनुसार विशिष्ठ लग्ननिर्धारण :

- ***त्रिबल शुद्धिः–***

वर –कन्या के जन्म कुण्डली के अनुसार विवाह हेतु विशिष्ठ लग्न के निर्धारण के शास्त्र मत् निम्नवत् है।

वरस्य भास्कर बलं कन्याश्च गुरोः बलम्।

द्वयोश्चन्द्रबलं ग्राह्यं विवाहोनान्यथा भवेत् ।।

अर्थात कन्या का गुरुबल , वर का सूर्यबल , तथा दोनों का चन्द्रबल इत्यादि पर विचार करके वर–कन्या हेतु विशिष्ट विवाह लग्न का निर्धारण किया जाता है। इन बलों का विचार वर और कन्या के जन्म राशि एवं प्रस्तावित विवाह तिथि में गोचर में रवि , गुरु और चन्द्रमा के उपस्थिति के अनुसार किया जाता है।

इसके लिए चन्द्र कुण्ड़ली में प्रस्तावित विवाह तिथि में गोचर के ग्रहो को स्थापित किया जाता है , तथा चन्द्र , गुरु और सूर्य का स्थान के आधार पर निम्न चक्र के अनुसार निर्णय लिया जाता है । यह आगे के सारणी में स्पष्ट किया गया है।

	गुरुशुद्धि चक्र	रविशुद्धि चक्र	चन्द्रशुद्धि चक्र
शुभ स्थान	2–5–7–9–11	3–6–10–11	3–6–7–10–11
पूज्य स्थान	1–3–6–10	1–2–5–7–9	1–2–5–9
निन्दित स्थान	4–8–12	4–8–12	4–8–12

उपर्युक्त सारणी के अनुसार अगर कन्या के चन्द्रकुण्डली में गोचर के ग्रहों को स्थापित करने पर गुरु 2–5–7–9–11 वें भाव में हो तो कन्या का गुरुबल अत्यन्त शुभकारी माना जाता है ।

परन्तु अगर कन्या के चन्द्रकुण्डली में गोचर के ग्रहों को स्थापित करने पर गुरु 1–3–6–10वें भाव में हो तो कन्या का गुरुबल पूजनादि करने पर हीं शुभकारी माना जा सकता है ।

इसी प्रकार अगर कन्या के चन्द्रकुण्डली में गोचर के ग्रहों को स्थापित करने पर गुरु 4–8–12 वें भाव में हो तो कन्या का गुरुबल पूजनादि करने पर भी शुभकारी नहीं माना जाता है । अतः इस प्रकार के मुहूर्त का त्याग करना हीं उचित है ।

इसी प्रकार वर के चन्द्रकुण्डली में गोचर सूर्य के स्थिति के अनुसार सूर्यबल पर विचार करना चाहिये । तथा वर और कन्या दोनों के चन्द्रकुण्ड़ली में गोचर चन्द्र के स्थिति के अनुसार चन्द्रबल पर विचार करना चाहिये ।

विवाह मुहूर्त के दस दोष, गोचर मे गुरु और शुक्र की स्थिति , वर का सूर्यबल, कन्या का गुरुबल एवं दोनो के चन्द्रबल पर विचार करके हीं शुभ विवाह के मुहूर्त का निरुपण किया जाना चाहिए।

➢ अष्टम् भाव शुद्धि

विवाह के समय लग्न कुंडली में अष्टम भाव का शुद्ध होना जरूरी है, क्योंकि अष्टम भाव वैवाहिक जीवन की लंबी उम्र, स्थिरता और स्वास्थ्य जुड़े होते हैं। यदि इसमें अशुद्धि हो, तो उसका समुचित उपाय करके विवाह करना चाहिए।

अष्टम भाव शुद्धि एक वैदिक ज्योतिषीय विचार है, जो विवाह मुहूर्त तय करते समय देखा जाता है। इसका संबंध लग्न कुंडली (विवाह के समय की कुंडली) के अष्टम भाव से होता है। जब विवाह मुहूर्त निकाला जाता है, उस समय की कुंडली (लग्न कुंडली) में यदि अष्टम भाव (8वां घर) में कोई अशुभ ग्रह हो,

या यह भाव कमजोर, पीड़ित, या पाप ग्रहों से ग्रस्त हो, या अष्टम भाव का स्वामी नीच का या शत्रु राशि में हो, तो उसे अशुभ माना जाता है।

विवाह के समय अष्टम भाव का शुभ और शुद्ध होना बहुत जरूरी माना गया है। यदि अष्टम भाव किसी भी ग्रह से युक्त न हो तो लग्न को अधिक शुभ माना जाता है , अगर अष्टम भाव का स्वामी रोगी भाव में बैठा हो या नीच राशि में स्थित नहीं हो।

कुछ वर्ष पहले तक सनातन विवाह में वर वरण के उपरांत विद्वान ज्योतिषियों के द्वारा लग्न–पत्रिका लिखने की प्रथा थी । लग्न–पत्रिका में सब कुछ सोच–विचार करके शुभ विवाह के मुहूर्त का निरुपण किया जाता था। परन्तु आजकल लग्न–पत्रिका में सब कुछ सोच–विचार करके शुभ विवाह के मुहूर्त का निरुपण करने की प्रथा लुप्तप्राय है। इस प्रथा की उपयोगिता पर ध्यान दिये बिना पंचांग में निरुपित विवाह लग्न का हीं निरुपण किया जाता है। सुधीजन हेतु शुभ विवाह मुर्हूत के अंकन के सुविधा लिए आगे वैवाहिक लग्नपत्रिका का एक प्रारुप प्रस्तुत किया गया है।

2.4. वैवाहिक लग्नपत्रिका का प्रारुपः—मनुस्मृति के अनुसारः

आच्छाद्यचार्ययित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।

आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः।।

वेद जानने वाले (दक्ष) एवं सदाचारी वर को स्वयं बुलाकर ,वस्त्राभूषण से वर – कन्या को अलंकृत कर कन्यादान करना धर्मयुक्त है । इसे ब्रह्म विवाह की संज्ञा दी जाती है ।

वर–वरण के उपरांत पुरोहित शुभ विवाह लग्न का विचार करके लग्नपत्रिका तैयार करतें हैं । इसमें विवाह मुर्हूत के साथ –साथ लोकाचार के अनुसार होनेवाले अनुष्ठानों का उल्लेख होता है । लग्नपत्रिका का मूल उद्देश्य वैवाहिक कार्यक्रमों की शुभता हेतु शास्त्र सम्मत् लग्नादि का निरुपण है । आजकल लग्नपत्रिका का प्रचलन कम हो गया है । लग्नपत्रिका के स्थान पर वैवाहिक कार्यक्रमों से युक्त वैवाहिक निमंत्रण पत्र ने ले लिया है । सुविधा के लिये एक सामान्य लग्नपत्रिका का प्रारुप आगे प्रस्तुत किया जा रहा है ।

श्री गणेशाय नमः

आदित्यादि ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः।

दीर्घायुः प्रकुर्वन्तु यस्यैषा लग्नपत्रिका ।।

ऊँ श्री मन् नृपति वीर विक्रमादित्य शुभ ....सम्वत् ,श्री शालीवाहन ....शाकाब्दा शुभ संवत्सरे , श्री महामांगल्या प्रदे मासानां मासोतमे .... मासे, ... पक्षे, ...तिथौ ,........... वासरे , तद्नुसार दिनांक .... ,..... .... नाम्नि कन्यां विवाहार्थ कल्याणवत्यां वेलायां सायेकाले मांगल्यमृतिका हरण शुभम्।

तथास्च .... मासे ,........ पक्षे,.............तिथौ , ... वासरे , तद्नुसार दिनांक .... प्रातः/सायं काले वंशरोपणम् तदुपरी हरिद्रादिवंदनम् , मण्डपाच्छानादिकं च श्रेयस्करं ।

पुनश्य .... मासे ,........ पक्षे,..............तिथौ , ... वासरे ,तद्नुसार दिनांक ...., ... काले मातृकापूजनम् , घृतढारी शुभम् ।

एवमेव .... मासे ,........ पक्षे,.............तिथौ , ... वासरे ,...............लग्ने, तद्नुसार दिनांक .... ,..............शुभकाले .... नाम्नि वरेण सह शुभ विवाहं भूयात् ।

卐 अथ लग्न कुण्डली 卐

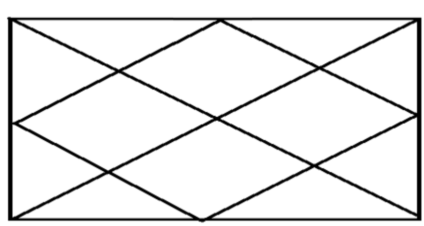

कन्या सौभाग्यवती भवेत् च वरः चिरंजीवी भवेत् ।

.

पुरोहित

प०.................

उपसंहार

इस अध्याय में गृहस्थ जीवन के शुभ प्रवेश द्वार विवाह संस्कार से संबंधित अनुष्ठान के मुहूर्त निर्धारण पर विवेचना की गई। परन्तु शुभ विवाह मुहूर्त में विवाह सम्पन्न होने पर भी विवाह को तब हीं शुभ माना जा सकता है । जब वर –कन्या एक दुसरे के अनुकूल हों । इसके लिये सनातन ऋषियों नें वर कन्या के ज्योतिषीये पहचान एवं जन्म नक्षत्र के अनुसार संभावित व्यवहार के अनुसार आंकलन करने की सलाह दी है। आंकलन की इस प्रक्रिया को अष्टकूट मिलान के नाम से जाना जाता है। आगे के अध्याय में अष्कूट मिलान पर विवेचना प्रस्तुत है।

इति शुभम्

ब्रह्मा–मुरारी–त्रिपुरांतकारी, भानु–शशि भूमिसुत बुधस्य।

गुरुश्चशुक्रः शनिराहूकेतवो, सर्वे ग्रहाः शुभकरं भवन्तुम् ।।

—:04:—

अष्टकूट

3.1. अष्टकूट क्या है ?

अष्ट का अर्थ होता है आठ और कूट का अर्थ होता है मूल्यांकन , अर्थात अष्टकूट का अर्थ है, आठ दृष्टिकोण से वर–कन्या के ज्योतिषीये पहचान के अनुसार वैवाहिक अनुकूलता का मूल्यांकन ।

भारतीय ऋषियों का यह मानना है कि, मनुष्य का अनाहत् चक्र (जो हृदय के समीप स्थित है) चन्द्रमा के गति के कारण प्रभावित होता है। किसी मनुष्य के जन्म के समय चन्द्रमा की उपस्थिति जिस नक्षत्र में होती है, उसी नक्षत्र को उस जातक की जन्म नक्षत्र माना जाता है। वैज्ञानिक मत के अनुसार चन्द्रमा एवं अन्य ग्रहसूर्य से प्रकाश ग्रहण करके हीं अलग–अलग तरंगदैर्घ्य के प्रकाश को पृथ्वी पर परावर्तित करती है। चन्द्रमा एवं अन्य ग्रहों का सूर्य और पृथ्वी दोनों से सम्बन्ध है । ***वैदिक मत में ज्योतिष शास्त्र के अनुसार चन्द्रमा प्रारब्ध और क्रियमाण के बीच की कड़ी अथवा योजक है। जबकि अन्य ग्रह प्रारब्ध के अनुसार जीवन को प्रभावित करतें है।*** *ज्योतिष शास्त्र के ज्ञातायों के अनुसार जन्म नक्षत्र से मनुष्य का सूक्ष्म शरीर अथवा मन, बुद्धि, अहंकार का गुणात्मक आंकलन हो जाता है ।*

3.2. ***अष्टकूट विवेचना :***

सनातन ऋषियों ने गूढ़ विषयों को समझाने के लिये संकेतों का उपयोग करना ज्यादा श्रेयस्कर माना है , क्योकि शब्दों के अर्थ देश अथवा काल , परिस्थिति के अनुसार बदल जातें हैं ,परन्तु संकेतों के अर्थ पर देश–काल का प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः नक्षत्र के अनुसार मन, बुद्धि, अहंकार की गुणात्मक आकलन के लिये भी ज्योतिष शास्त्र में संकेतों का हीं प्रयोग किया जाता है ।

उदाहरण के लिये चेतना के स्तर का मूल्यांकन के लिये वर्ण (ब्रह्मण , क्षत्रिय , वैश्य , शूद्र) का उपयोग किया जाता है । इन संकेतों से मनुष्य की चेतना के स्तर को समझने में आसानी होती है । इसलिये कई संकेतों का उपयोग

कर वर–वधू के जन्म नक्षत्र के अनुसार उनके व्यक्तित्व (मन,बुद्धि, अहंकार की गुणात्मक अवस्था) का ज्योतिषीय आंकलन किया जाता है । नक्षत्र के आधार पर हीं विवाह के पूर्व हीं भविष्य में एक दुसरे के साथ अनुकूलता के आंकलन के लिये अष्टकूट मिलान किया जाता है। अष्टकूट मिलान निम्नवत् हैं :

1. **वर्णकूट –** दोनों के नैसर्गिक चेतना के स्तर का मूल्यांकन, भौतिक जीवन में प्रायः कन्या पुरुष के गुंणों को आत्मसात कर लेती है , परन्तु पुरुष अपने अहंकार के कारण कन्या के चेतना के अनुरुप प्रायः नहीं हो पाता है । इसलिये वर्णकूट के अनुसार उच्च चेतना स्तर के पुरुष और निम्न चेतना स्तर के कन्या को स्वीकार करने की सलाह दी जाती है । परन्तु निम्न चेतना स्तर के पुरुष और उच्च चेतना स्तर के कन्या को अनुकूल नहीं माना जाता है। इसके अनुकूलता के लिये अधिकतम 1 अंक निर्धारित किये गयें हैं।
2. **वश्यकूट –** दोनों के एक दुसरे के प्रति नैसर्गिक संवेदना का मूल्यांकन को प्रकट करने के लिये पॉच प्रकार के संकेतों का प्रयोग किया जाता है ,जो जन्तु (चतुष्पद – जो मानव के वश में रहे ,मानव ,जलचर , वनचर – जो मानव के वश में न रहे ,एवं कीट) के रुप में होते हैं। इनके आपसी सम्बन्ध को चार (मित्र – अगर संवेदना बराबरी का हो ,वैश्य – अगर संवेदना प्रेम के वश में हों, भक्ष्य – अगर एक अपने को श्रेष्ठ और दूसरे को निम्न समझता हो , शत्रु– अगर दोनों एक दूसरे से शत्रु का भाव रखते हों) प्रकार के होते हैं। इसके अनुकूलता के आंकलन के लिये अधिकतम 2 अंक निर्धारित किये गयें हैं।
3. **ताराकूट –** दोनों के भाग्योदय में संभावित नैसर्गिक सहायता के अनुसार मूल्यांकन। वर –कन्या के नक्षत्रों के दूरी के आधार पर नौ प्रकार के तारों की परिकल्पना की गई है । इनमें से कुछ तारे शुभ , तथा कुछ तारे अशुभ माने जाते हैं । जिसका तारा शुभ होता है वह दूसरे का भाग्योदय में सहायक होता है । परन्तु अगर दोनों का तारा अशुभ हो तो दोनों का भाग्योदय उनके अपने प्रयास एवं प्रारब्ध के कारण से होगा । इस संयोग का एक दूसरे के भाग्योदय में सहायता प्राप्त नही होता है । इसके अनुकूलता के आंकलन के लिये अधिकतम 3 अंक निर्धारित किये गयें हैं।
4. **योनिकूट –** दोनों के नैसर्गिक मनोवृति के अनुसार मूल्यांकन। प्रत्येक नक्षत्र की योनि को सांकेतिक रुप से पशु के द्वारा प्रदर्शित किया जाता

है। इस प्रकार 27 नक्षत्रों के योनि को 14 प्रकार के पशुओं द्वारा निरुपित किया गया है। **कई लोग योनि को यौण से सम्बद्ध मानतें हैं। परन्तु वास्तव में यहाँ योनि पुराणों में वर्णित 84 लाख योनि से सम्बद्ध है ।** प्रत्येक योनि की मनोवृति अलग–अलग होती है, जिसके कारण उनमें मित्रता एवं शत्रुता होती है । जैसे सर्पयोनि के प्राणी और नकूल योनि के प्राणी अपने मनोवृति के अनुसार शत्रु हीं होंगे ,वे मित्र नहीं हो सकते। इसके अनुकूलता के आंकलन के लिये अधिकतम 4 अंक निर्धारित किये गयें हैं।

5. **ग्रहमैत्री** –एक दुसरे के साथ संभावित नैसर्गिक समायोजन–शक्ति अथवा संभावित आपसी विश्वास का मूल्यांकन। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ग्रहों के बीच भी नैसर्गिक रुप से मित्रता , समभाव एवं शत्रुता होती है । अगर वर–कन्या के राशिस्वामी ग्रह के बीच मित्रता हो तो दोनों (वर–कन्या) के बीच आपसी सामनजस्य बना रहता है ।

   वर–कन्या के बीच नैसर्गिक समायोजन–शक्ति अथवा विश्वास का होना अति आवश्यक है । **महर्षि शौनक का मत्त है कि अगर उपर्युक्त चार प्रकार के कूट प्रतिकूल भी हो तो ग्रहमैत्री अनुकूल होने पर उनकी प्रतिकूलता नगण्य हो जाती है।**

   सूक्ष्म विश्लेषण के लिये महर्षि वशिष्ठ का मत है कि अगर वर–वधू के राशियो के नवांश पतियों में मित्रता हो तो विवाह पूर्ण शुभ होता है । अतः राशि के अनुसार ग्रहमैत्री अनुकूल न होने पर राशियों के नवांश के अनुसार ग्रहमैत्री का आंकलन करने के उपरांत हीं ग्रहमैत्री के अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता का निर्णय लेना चाहिये ।

   इसके अनुकूलता के आंकलन के लिये अधिकतम 5 अंक निर्धारित किये गयें हैं। यह माना जा सकता है कि ग्रहमैत्री अनुकूल होने पर उपर्युक्त अष्टकूट का 15 अंक स्वतः प्राप्त हो जाता है । क्योंकि उपर्युक्त चारो कूट की प्रतिकूलता ग्रहमैत्री अनुकूल होने पर नगण्य हो जाती है ।

6. **गणकूट** – दोनों के संभावित नैसर्गिक विचारधारा के अनुसार मूल्यांकन। जन्म नक्षत्र के अनुसार जातक की नैसर्गिक विचारधारा होती है । इसे सांकेतिक रुप से निरुपित करने के लिये तीन प्रकार (देव , मानव, दानव) के गणों का सहायता लिया जाता है । देवता सात्विक गुण धारण करतें हैं। राक्षस तमस गुण धारण करतें हैं तथा मानव राजस गुण धारण करते हैं। वास्तव में देव और राक्षस का अर्थ पौराणिक देव और राक्षस नहीं हैं ।

ये बस सांकेतिक शब्द है । महर्षि गर्ग का मत है कि अगर ग्रहमैत्री उत्तम हो तो गणदोष का भी प्रतिकूल प्रभाव दम्पत्त्य जीवन पर नहीपड़ता है ।

ग्रहमैत्री च राशिश्य च विद्यते नियतं यदि।
न गणाभावजनितं दूषणं स्याद् विरोधदम्।।

इसके अनुकूलता के लिये अधिकतम 6 अंक निर्धारित किये गयें हैं।

7. 7. **भ(राशिचक्र)कूट** – संभावित संयुक्त पुरुषार्थ का मूल्यांकन । विवाह का मूल उद्देश्य है धर्म – अर्थ –काम नामक पुरुषार्थ की प्राप्ति में पति–पत्नी का आपसी सहयोग । जातक कुण्डली में 5–9 भाव धर्मार्थ , 6–8 भाव कामार्थ तथा 2–12 भाव अर्थार्थ अथवा धन के लिये उत्तरदायी माना जाता है। अगर वर –कन्या के राशि का आपसी सम्बन्ध इन भावों के प्रतिकूल हो तो इसे भकूट दोष कहतें हैं । इसके अनुकूलता के लिये अधिकतम 7 अंक निर्धारित किये गयें हैं। वर कन्या की राशि परस्पर 6–8 , 5–9 , अथवा 2–12 हों तो भकूट दोष माना जाता है ।

   उदाहरण के लिये अगर वर की राशि मेष हो तथा कन्या की राशि कन्या हो तो मेष राशि से कन्या राशि छठी राशि है , इसी प्रकार कन्या राशि से मेष राशि आठवीं राशि है । अतः एक दुसरे से राशि का अन्तर 6–8 होने के कारण भकूट षड़ाष्टक दोष से पूर्ण माना जायेगा ।

   वृहत्ज्योतिसार के अनुासार अगर दोनों राशि के स्वामी समान हों अथवा मित्र हों तो भकूटदोष का प्रभाव नगण्य माना जाता है । इसके अनुकूलता के लिये अधिकतम 7 अंक निर्धारित किया गया है ।

8. **नाड़ीकूट** – विवाहोपरान्त संभावित स्वास्थ्य एवं प्रजनन अनुकूलता का मूल्यांकन। आर्युवेद के अनुसार वैद्य नाड़ी परीक्षण करके रोगों का पता लगाते हैं । इसके लिये वे अपनी तीन अंगुलियों (तर्जनी , मध्यमा तथा अनामिका) का सहारा लेतें हैं, तथा कफ –पीत–वायु के दोष का अनुमान लगाकर रोगों के निदान हेतु औषधि निर्धारित करतें हैं। आयुर्वेद के अनुसार तर्जनी–आदि , मध्यमा–मध्य और अनामिका–अन्त्य नाडी का प्रतिनिधित्व करता है। अगर वर–कन्या दोनों की नाड़ी समान हो तो दोनों के समागम में एक हीं प्रकार का दोष द्विगुणित होने की संभावना रहती है जिससे दोनों के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को प्रतिकूल प्रभाव पड़नें की संभावना होती है। इसके अनुकूलता के लिये अधिकतम 8 अंक निर्धारित किया गया है।

अष्टकूट में सर्वाधिक अंक नाड़ीकूट को दिया गया है । अतः अष्टकूट में नाड़ीकूट को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि नाड़ीदोष केवल ब्रह्मण वर्ण के लिये है। इसका अर्थ जन्म के अनुसार ब्रह्मण जाति नहीं है। यहाँ ब्राह्मण वर्ण का अर्थ नक्षत्र के अनुसार ब्राह्मण वर्ण है , अथवा वे सारे लोग हैं , जो शारीरिक से ज्यादा मानसिक कार्य करते हैं। नाड़ीदोष सबके लिये लागु होता है।

अगर वर–कन्या का जन्म नक्षत्र एक ही हो तथा चरण अलग–अलग हो तो नाड़ी–दोष का प्रभाव नहीं पड़ता है ।

मुहूर्त चिन्तामणि के अनुसार , वर–वधू की राशि एक एवं नक्षत्र अलग हों अथवा नक्षत्र एक और राशि अलग–अलग हों तो भी गण दोष तथा नाड़ी दोष का प्रभाव नगण्य होता है ।

उपर्युक्त विवेचना से एक बात स्पष्ट है कि ग्रहमैत्री अष्टकूट के अधिकतर दोषों को नगण्य कर देता है। इसका व्यवहारिक मनोविज्ञान यह है कि अगर दाम्पत्य जीवन में एक दुसरे की भावना का ध्यान रखें , तो दामपत्य जीवन में गुणत्मक समायोजन बना रहता है । जिससे जीवन आनन्दमय बना रहता है।

अष्टकूट सुक्ष्मशरीर के अनुकूलन की अभिधारणा पर आधारित है । किसी भी वर–कन्या के जोड़ी का अनुकूलन प्रत्येक दृष्टिकोण से सर्वोत्तम नही हो सकती है। इसलिये विद्वानों ने अष्टकूट मिलान के कुल 36 अंको में से 18 अंक प्राप्त होने पर भी अनुकूलता को संतोषजनक मानतें हैं । परन्तु प्रायः विद्वान वर–कन्या के नक्षत्र के अनुसार नाड़ी दोष होने पर 18 या अधिक अंक प्राप्त होने पर भी विवाह को अनुकूल नहीं मानते हैं । उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि अगर वर–कन्या की ग्रहमैत्री और नाड़ी के अनुसार अनुकूलन हो तो अन्य दोष नगण्य हो जातें है।

आजकल कई ऐप वर–कन्या के जन्म सम्बन्धी आवश्यक जानकारी प्रेषित करने के उपरांत अष्टकूट मिलान का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर देतें हैं । वैवाहिक अनुकूलता के निर्णय में ज्योतिषीय विद्वान की भुमिका आज भी अक्षुण्य है। क्योकि मौलिक ज्योतिषीये विश्लेषण के बिना ऐप द्वारा प्रदर्शित आँकड़ों के अनुरुप निर्णय लेना युक्तिसंगत प्रतीत नही होता है।

उपसंहार :

अष्टकूट विवेचना से सुक्ष्म शरीर के ज्योतिषीय पहचान के अनुसार अनुकूलता के बारे में तो जानकारी प्राप्त हो जाती है । परन्तु अष्टकूट मिलान में 18 से अधिक अंक प्राप्त होने के वावजुद जीवन में कई अप्रत्याशित प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है। तथा वैवाहिक समायोजन में परेशानियाँ आने लगती है। इसका मुख्य कारण अपने–आप को नहीं समझ पाना है, जो पति–पत्नी दोनों के सामन्यजस्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है । ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मंगल ग्रह अहंकार कारक माना जाता है। कुण्डली में उपस्थित सदोष मंगल की सप्तम भाव में पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव के कारण अहंकार का प्रभाव वैवाहिक जीवन पर पड़ता है। जिससे वैवाहिक जीवन कष्टप्रद हो जाता है। इसलिए विवाह में मांगलिक दोष को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है । मंगल ग्रह के कारण दामपत्य जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का किी विवेचना अगले अध्याय में किया गया है ।

इति शुभम्

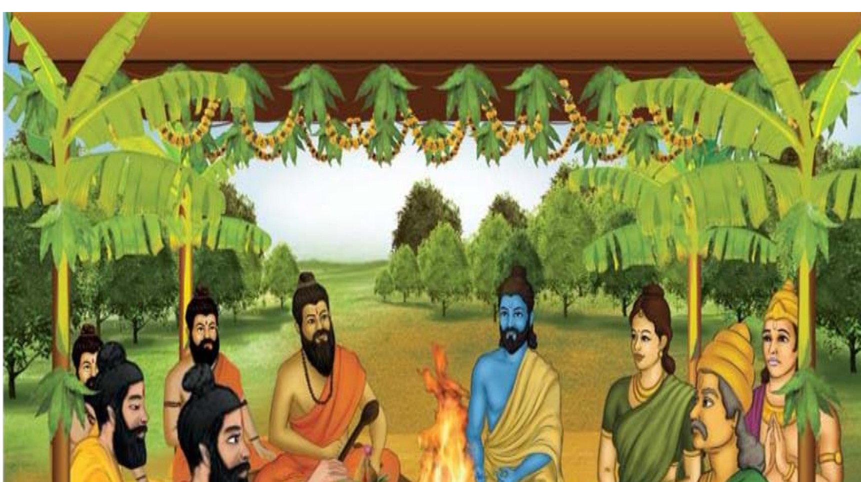

जीवेषु करुणा चापि मैत्री तेषु विधीयताम् ।।

लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ।।

—:04:—
विवाह में मंगल दोष

4.1.नवग्रह का गुणात्मक परिचयः

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मुख्य ग्रहों की संख्या 7 तथा छायाग्रहों की संख्या 2 बताई गई है। इसमें पृथ्वी के स्थान पर दृकसिद्ध सिद्धान्त के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा को ग्रह माना गया है । वास्तव में कोई भी ग्रह शुभ या अशुभ अथवा पापी नहीं होता है । इसलिये ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों के गुणो का व्याख्या करने के लिये ग्रहों को दो वर्गो में विभाजित किया गया है ।

1. सौम्य ग्रह – चन्द्र (शुक्ल), बुध(सौम्य), शुक्र , एवं वृहस्पति

2. क्रूर ग्रह – सूर्य ,मंगल ,शनि , चन्द्र (कृष्ण) , बुध(क्रूर),राहू , केतु

दोनो प्रकार के ग्रह अपनी अच्छी स्थिति में शुभ फलदायक ही होते हैं, इसी प्रकार अगर कोई ग्रह अपनी अच्छी स्थिति नहीं हो तो उनके फल पीड़ादायक हीं होते हैं । अपने शत्रु के घर में स्थित होने पर, अथवा शत्रु पर दृष्टि डालनें पर सौम्य ग्रह क्रूरता का प्रदर्शन नहीं करते जबकी क्रूर ग्रह अपनी क्रूरता से शत्रु के संबधित भाव को नष्ट भ्रष्ट कर देतें हैं ।

ग्रहो के स्वभविक गुणों को संकेतों में इस प्रकार बताया गया है ।

1. सूर्य :– यह अपनी मित्रता या शत्रुता राजा के समान निभाता है । जिसका परिणाम दूरगामी प्रभाव से प्रेरित होता है। इसका तत्कालीन कोई प्रभाव नहीं होता है ।
2. चन्द्रमा :– यह अपनी मित्रता या शत्रुता रानी के समान निभाता है । जिसका परिणाम तत्कालीन प्रभाव से प्रेरित होते हैं ।
3. बुध :–यह अपनी मित्रता या शत्रुता राजकुमार के समान निभाता है। जिसके परिणामस्वरुप प्रत्येक कदम सतर्कता से प्रेरित होते हैं ।
4. मंगल :–यह अपनी मित्रता या शत्रुता सेनापति के समान निभाता है। जिसके परिणामस्वरुप प्रत्येक कदम मित्र की रक्षा और शत्रु के विनाश से प्रेरित होते हैं ।

5. बृहस्पति :– यह अपनी मित्रता या शत्रुता आध्यात्मिक सलाहकार के समान निभाता है । जिसके परिणामस्वरुप प्रत्येक कदम नीति और अनीति के विचार से प्रेरित होता है ।
6. शुक्र :–यह अपनी मित्रता अथवा शत्रुता कूटनीतिक प्रशासक के समान निभाता है। जो अपना प्रत्येक कदम उचित्त समय पर अपने विशेष रणनीति के तहत उठाता है ।
7. शनि :– यह अपनी मित्रता या शत्रुता न्यायाधीश के समान निभाता है। जिसका प्रत्येक कदम शाश्वत ब्रह्माण्ड़ अथवा प्रकृति के नियम से बंधा होता है । इसके निर्णय पर भावना का प्रभाव नहीं पड़ता है।
8. राहु :– यह छाया ग्रह है । इसकी विशेषता है कि यह जिस भाव में उपस्थित होता है , उसके फल से आसक्त होकर अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिये अच्छे– बुरे का ध्यान नहीरखता है ।
9. केतु :–यह छाया ग्रह है। इसकी विशेषता है कि यह जिस भाव मे उपस्थित होता है । उसके फल से अनासक्त रहकर लापरवाह के समान किसी प्रकार का कदम हीं नहीं उठाता है ।

इस प्रकार मंगल ग्रह को ग्रहों का सेनापति माना जाता है। अतः अगर सेनापत्ति कमजोर हो अथवा बुरे संगति के कारण विश्वास के लायक न रहे तो वह रक्षा करने में अक्षम होता है , या विश्वासघात के कारण उसे जिसकी रक्षा करनी चाहिये उसी को वर्बाद कर देता है । अतः अगर मंगल जन्मकुण्डली में काम–भाव (सप्तम् भाव) में बैठा हो अथवा काम–भाव पर क्रूर दृष्टि डाल रहा हो तो अज्ञात कारणों से वैवाहिक जीवन आनन्दमय नहीं रह पाता है ।

4.2. मंगल दोष का आंकलन :

वृहद पाराशर होराशास्त्र, जातक पारिजात, मुहुर्त मार्तण्ड , मुहुर्त चिन्तामणि आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में मंगल दोष का कोई विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं होता है । परन्तु वृहदज्योतिसार में इस दोष का वर्णन करते हुये कहा गया है :

लग्ने –व्यये च पाताले – जामित्रेचाष्टमें कुजे।

कन्या भर्तृ विनाशाय भर्ता कन्या विनाशकः ।।

इसका अर्थ है कि जन्म कुण्डली में लग्न, चतुर्थ , सप्तम , अष्टम या द्वादश भाव में मंगल हो तो कन्या (जिसके कुण्डली में उपर्युक्त भावों में से किसी भी भाव में मंगल उपस्थित हो) पति के विनाश का कारण बनती है, तथा पति (जिसके कुण्डली में उपर्युक्त भावों में से किसी भी भाव में मंगल उपस्थित हो) पत्नी के विनाश का करण बनता है । यह स्थिति तब बनती है जब पति–पत्नी दोनों में से एक मंगल दोष से रहित हो । इस श्लोक के शाब्दिक अर्थ के कारण सनातन धर्मावलंबियों के बीच मंगलदोष को लेकर बहुत अधिक भय व्याप्त है। अतः मंगल ग्रह की पूर्ण विवेचना अत्यावश्यक है ।

*4.3. **मंगल दोष की पूर्ण विवेचना :–***

इस श्लोक को विवाह के प्रसंग में लिखा गया है , युद्ध के प्रसंग में नहीं इसलिए विनाश का अर्थ मृत्यु न होकर विवाह के उद्देश्य (धर्म– अर्थ–काम) प्राप्ति का नाश होना चाहिये । धर्म के नाश का अर्थ है स्वधर्म का पालन न करना। अर्थ के नाश का अर्थ है गृहस्थ जीवन के जरूरत के अनुसार सम्पति का उपार्जन नहीं कर पाना तथा काम का नाश का अर्थ है संतति प्राप्त न होना। अतः मंगल दोष के लिये उपर्युक्त श्लोक का शाब्दिक अर्थ के स्थान पर भावार्थ पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है ।

4.4. सूर्य शनि राहु केतु भी क्रूर ग्रह हैं । तो विवाह में केवल मंगल दोष हीं क्यों ?

मंगल ,सूर्य, शनि ,राहू और केतु क्रूर ग्रह मानें जातें हैं। जिनके गुण इस प्रकार हैं :

***सूर्य :–** इसकी दण्ड़ देने की प्रक्रिया राजा के भाँति होती है , अतः वे परिस्थिति के अनुसार दण्ड भी दे सकतें हैं और क्षमा भी कर सकतें हैं।*

***शनि :–** इनका निर्णय प्रक्रिया न्याय आधरित होता है। जो कष्टकारी तो हो सकता है परन्तु अन्यायपूर्ण नही।*

***राहू–केतु :–**राहू–केतु छायाग्रह हैं इसलिये ये कोई स्वतंत्र फल देनें में समर्थ हीं नहीं होते हैं।*

__मंगल :–__ ये देवताओं के सेनापति हैं ,फलतः इनका ध्येय शत्रुओं को पुर्णतः समाप्त करना होता है । अतः वे जिसे अपना शत्रु समक्ष लेतें हैं उसके नाक में दम कर देतें हैं।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो गया कि वैवाहिक जीवन में मंगल की क्रूरता अन्य क्रूर ग्रहो से ज्यादा नुकसान पहुँचाने वाली है ।

4.5. कुण्डली के १,४,७,८,१२ भाव में मंगल रहने पर हीं मंगल दोष क्यों ?

विवाह का आध्यात्मिक उद्देश्य धर्म–अर्थ–काम की प्राप्ति है । धर्म और अर्थ के लिए आपसी समझ की आवश्यकता होती है , परन्तु काम के लिए स्वस्थ शरीर भी आवश्यक है ।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार कुण्डली का सप्तम भाव वैवाहिक जीवन के सुख को दर्शाता है , तथा कुण्डली का अष्टम भाव स्वास्थ को । इसलिए क्रुद्ध मंगल की सप्तम भाव उपस्थिति या दृष्टि के वैवाहिक जीवन के शुभता का नाश करता हैं , तथा अष्टम भाव में क्रुद्ध मंगल की उपस्थिति स्वास्थ का नाश करने में सक्षम है ।

- *अगर मंगल लग्न में उपस्थित है तो यह सप्तम दृष्टि से सप्तम भाव को देखता है ।*
- *अगर मंगल चतुर्थ भाव में है, तो यह चतुर्थ दृष्टि से सप्तम भाव को देखता है ।*
- *अगर मंगल सप्तम भाव में स्थित है तो सप्तम भाव में उसका प्रभाव रहेगा हीं।*
- *अगर मंगल अष्टम भाव में हैं तो इसके उपस्थिति का प्रभाव स्वास्थ एवं धन पर पडेगा हीं।*
- *अगर मंगल द्वादश भाव में है तो यह अपनी अष्टम दृष्टी से सप्तम भाव को देखेगा ।*

इस विवेचना से यह स्पष्ट हो गया कि मंगल की उपस्थिति 1,4,7,8,12 वें भाव में किसी न किसी रूप से वैवाहिक जीवन को प्रभावित करता है । यही कारण है कि 1,4,7,8,12 वें भाव में अमंगलकारी मंगल की उपस्थिति वैवाहिक जीवन को विनष्ट करने की क्षमता रखती है । दक्षिण भारत में दुसरे भाव में

भी अमंगलकारी मंगल की उपस्थिति मांगलिक दोष उत्पन्न करने वाला माना गया है ।

4.6..मंगल ग्रह को कब मंगलकारी और कब अमंगलकारी?

मुहुर्त चिन्तामणि का एक प्रसिद्व श्लोक है :

स्वगृहे न विघटयति तुगं मित्र गेहे वा ।

अर्थात कोई भी ग्रह स्वगृह, मित्रगृह और अपने उच्च में उपस्थित होकर कभी विघटनकारी प्रभाव नहीं देते हैं । अतः ज्योतिष शास्त्र का इस नियम को मंगल–ग्रह के लिय भी प्रभावी माना जाना चाहिए। ज्योतिषीय प्रयोग के लिये मंगल के गुण निम्नवत् है :

ग्रह	स्वभाव	मूल त्रिकोण	स्वगृह	उच्च राशि	नीच राशि	मित्र	सम	शत्रु	पूर्ण दृष्टी
मंगल	क्रूर	मेष	वृश्चिक	मकर	कर्क	सू०, गु०, च०	शुक्र शनि	बुध	4 7 8

मंगल अगर स्वगृह (मेष ,वृश्चिक), मित्रगृह (कर्क ,सिंह ,धनु ,और मीन), अपने उच्च (मकर) में उपस्थित हो तो उसका प्रभाव मंगलकारी होता है । एवं अगर सम राशिगृह(वृश्चिक , तुला , कुम्भ) में हो तो भी यह अमंगलकारी प्रभाव नहीं देता है । परन्तु अगर शत्रुगृह (मिथुन ,कन्या)में हों तो इसका प्रभाव अमंगलकारी हो सकता है ।

भारतीय ज्योतिष शास्त्रों में फलकथन के लिए नैसर्गिक मित्रता एवं शत्रुता से ज्यादा महत्व पंचधा मैत्री (नैसर्गिक + तात्कालिक) को दिया जाता है। इसलिए पंचधा मैत्री के अनुसार अगर बुघ (मिथुन और कन्या का स्वामी ग्रह) मि़त्र है , तो भी मंगल अमंगलकारी नहीं होंगा। अतः शत्रुगृह में स्थित होकर भी यह अमंगलकारी नहीं होगा ।

ज्योतिष के सिद्वान्तों के अनुसार ग्रहों की स्थिति मैत्री इत्यादि के फलों पर सावधानी से विचार करके भारतीय मनिषियों ने ग्रहों के मंगलकारी अथवा विनाशकारी प्रभाव को जानने के लिये ग्रहों के षड़बल प्राप्त करने की सलाह दी है।

ग्रह के षड़बल के अनुसार हीं ग्रह की सक्रियता–निष्क्रियता एवं इष्टफल –कष्टफल का ज्ञान हो पाता है । आजकल कुण्ड़ली के लिये उपयोगी कई ऐप सक्रियता–निष्क्रियता एवं इष्टफल –कष्टफल की गणना सरलता से कर देते हैं ।

अगर किसी ग्रह के लिये प्राप्त इष्टफल >कष्टफल , तो ग्रह शुभफलदायक माना जाता है । परन्तु अगर इष्टफल <कष्टफल, तो यह ग्रह पीड़ादायक माना जाता है । साथ हीं साथ ग्रहों को सक्रिय रहने के लिये न्युनतम षड़बल की आवश्यकता होती है । कोई भी ग्रह सक्रिय तब हीं माना जाता है , जब उस ग्रह को न्युनतम आवश्यक षड़बल प्राप्त हो ।

मंगल को प्रभावी होने के लिये मंगल का सक्रिय होना भी आवश्यक है। मंगल ग्रह के लिये आवश्यक न्युनतम षड़बल 5 माना जाता है । अर्थात अगर मंगल के पास 5 से कम षड़बल हो तो मंगल अच्छा या बुरा किसी भी प्रकार का फल देने में सक्षम नहीं होगा । अतः मंगल की उपस्थिति 1–4–7–8–12 भाव में वृहदज्योतिसार के उपर्युक्त श्लोक के अनुसार तव प्रभावी होगी जब कुण्डली के अनुसार मंगल का सक्रिय हो एवं इष्टफल–कष्टफल से कम हो। मंगलदोष के सही आंकलन के लिये कुण्डली के अनुसार मंगल का षड़बल जानना अति आवश्यक है ।

*4.7.**पूर्ण मंगल दोष और आंशिक. मंगल दोषः–***

मंगल दोष लग्न कुण्डली एवं चन्द्रकुण्ड़ली दोनों में मंगल के स्थान द्वारा निश्चित किया जाता है । अगर जातक लग्नकुण्ड़ली और चन्द्रकुण्ड़ली दोनों के अनुसार मंगल दोष युक्त होता है तो वह पूर्ण मांगलिक दोषयुक्त माना जाता है अन्यथा केवल एक में हीं मंगलदोष होनेपर जातक आंशिक मंगलदोषयुक्त माना जाता है ।

4.8 मांगलिक दोष कब प्रभावहीन हो जाता है?

इस दोष के परिहार के लिये ज्योतिर्विदों का सुझाव है कि अगर वर–वधु दोनो के कुण्डली में मंगल दोष हो तो , मंगल दोष का प्रभाव उनके दाम्पत्य जीवन पर विपरीत नहीं पडेगा । इसको इस तर्क से समझा जा सकता है कि अगर दो सेना एक हीं सेनापति के प्रभाव में आ जाये तो दोनों हीं सेनाए सुरक्षित रहती है । इस दोष के अन्य भी बहुत सारे परिहार बताये गये हैं ।

परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि हमें कुण्डली से इसका निरिक्षण आवश्यक रुप से करनी चाहिये कि कुण्डली में मंगल की उपस्थिति मंगलकारी है अथवा अमंगलकारी। क्योंकि 1,4,7,8,12 वें भाव में मंगल की उपस्थिति मात्र से मांगलिक दोष बताना ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार तर्कसंगत नहीं है।

उपसंहार :

साधारणतः सनातन धर्मावलंबी अष्टकूट मिलान और मंगल दोष अनुकूलन के परीक्षण के उपरांत वर–कन्या के विवाह के बारे में सकारात्मक निर्णय ले लेतें हैं। परन्तु आजकल की पीढ़ी किसी भी वैदिक रीति को वैज्ञानिक तर्क अथवा दर्शन के अनुसार समझना चाहती है , तथा जिनके लिए वैज्ञानिक तथ्य उपलब्ध नहीं हो उसपर प्रश्नचिन्ह लगाकर सामान्य जनों में भ्रम की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। कई लोग आजकल ज्योतिष शास्त्र को अप्रासंगिक बताने लगें हैं। अगले अध्याय में ज्योतिष शास्त्र के वैज्ञानिकता पर विमर्श प्रस्तुत है जिसे गूढ़ ज्योतिष विज्ञान (**Esoteric Astrology)** *के नाम से जाना जाता है।*

इति शुभम्

—:05:—

गूढ़ ज्योतिष

.1. गूढ़ ज्योतिष विज्ञान (Esoteric Astrology) :

*एक तिब्बती गुरु की प्रेरणा से **एलिस ए० वेली** **(Alice A. bailey)** ने गूढ़ ज्योतिष विज्ञान (Esoteric Astrology) पर 20वीं सदी के आरम्भ में अपने विचार प्रगट किया था। जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:*

- *भौतिक शरीर का तो अध्ययन किया जा सकता है , क्योकि यह दृश्य एवं स्थूल है। आज के वैज्ञानिक युग में भौतिक शरीर के सुक्ष्म अध्ययन के लिये लगातार सफल प्रयास किये जा रहे हैं । जिनका उदाहरण एक्स रे, अलट्रासाउंड़ , इ०,सी०जी० इत्यादि है । परन्तु सूक्ष्म शरीर का अध्ययन संभव प्रतीत नहीं होती है , क्योंकि यह दृश्य नहीं है।*
- *आकाशीये पिण्ड़ों के प्रभाव के कारण हीं हमारे ग्रन्थियों से स्रावित हॉर्मोन का संतुलन अथवा असंतुलन होता है । जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे शरीर तथा मन पर पड़ता है। ऐसा माना जाता है कि मन शरीर को नियंत्रित करता है एवं अन्तःग्रन्थियों से स्रावित होनेवाले हॉर्मोन मन को अपने अनुसार प्रभावित करते हैं।*
- *हॉर्मोन का संतुलन अथवा असंतुलन अर्वाचिन खोजों में से एक है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार मनुष्य के व्यक्तित्व में उसके विभिन्न ग्रन्थियों से उत्पन्न हॉर्मोन के समायोजन का प्रभाव परिलक्षित होता है ।*

सुक्ष्म शरीर पर खगोलीये विकिरण के कारण पड़ने वाले प्रभाव के कारण भौतिक शरीर की प्रतिक्रिया का अध्ययन गूढ़ ज्योतिष शास्त्र का मौलिक विषय है।

5.2.गूढ़ ज्योतिष विज्ञान और कुण्ड़लिणी :

स्वामी शिवानन्द और स्वामी सत्यानन्द (बिहार स्कूल ऑफ योगा) *ने कुण्ड़लिणी तंत्र नामक पुस्तक में सप्तचक्र एवं ग्रन्थियों के बीच सम्बन्ध पर प्रकाश ड़ाला है। जापान के महान परामनोवैज्ञानिक **डॉ० हिरोशी मोटोयामा** **(Dr. Hiroshi***

Motoyama) ने भी अन्तःस्रावी ग्रन्थि और सप्तचक्र के बीच सम्बन्ध को मापने एवं सिद्ध करने का प्रयास किया था। कई अन्य ग्रन्थों में इसके बारे में अलग अलग मत् है । परन्तु लगभग सभी विद्वान यह मानते हैं कि अन्तःस्रावी ग्रन्थि पर हमारा अधिकार नहीं होता है । यह परिस्थिति के अनुरुप स्वतः स्रावित होती है। इसपर ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त तरंगों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। जैसे किसी के बातों से क्रोध अथवा शान्ति का उत्पन्न होना । अनेक महानुभावों द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयास के सूचनाओं को निम्न प्रकार से तालिकाबद्ध किया जा सकता है :

क्र०	चक्र	स्थान	प्रभवी ग्रह	ग्रन्थि
1	मूलाधार	रीढ़ की जड़	शनि (Saturn)	एड्रिनल (Adrenal)
2	स्वाधिष्ठान	नाभि के नीचे	शुक्र (Venus)	गोनैड्स(Testes/Ovaries)
3	मणिपुर	नाभी स्थान	मंगल (Mars)	पैंक्रियास (Pancreas)
4	अनाहत्	हृदय	चंद्र (Moon)	थाइमस (Thymus)/ हाइपोथैलेमस (Hypothalamus)
5	विशुद्धि	कण्ठ	बुध (Mercury)	थायरॉइड (Thyroid)
6	आज्ञा	भ्रूमध्य	गुरु (Jupiter)	पिट्यूटरी (Pituitary)
7	सहस्त्रसार	सिर का शिर्ष	सूर्य (Sun)	पीनियल (Pineal)

नोट– थाइमस ग्रन्थि जो चन्द्र से जुड़ा है। किशोरावस्था के बाद धीरे–धीरे छोटा होने लगता है ,और अपना ग्रन्थि स्वरुप खो देता है। इसका प्रभाव यह है कि इस आयु के बाद भावना पर नियंत्रण की शक्ति मनुष्य में आ जाती है। इसके बाद वह दिल नहीदिमाग से ज्यादा काम लेने लगता है। अतः चन्द्रमा का प्रभाव हाइपोथैलेमस ग्रन्थि पर प्रभाव डालने लगती है।

उदाहरणः– मंगल के कुप्रभाव से मणिपुर चक्र के अव्यवस्थित होने का खतरा होता है। जिसका सीधा प्रभाव पैंक्रियास पर पड़ता है। इससे डायबिटीज होने का खतरा हो सकता है। ज्यादा या कम रक्तशर्करा के कारण मस्तिष्क के न्यूरोट्रांसमीटर प्रभावित होतें है। जिसके कारण अवसाद, चिड़चिड़ापन, चिंता, क्रोध , धबराहट, कमजोरी आदि आधि –व्याधि उत्पन्न होते हैं।

अगर वर–बधू दोनों मंगल दोष से प्रभावित हों तो मंगल के प्रभाव के कारण दोनों के विचार के स्तर में समानता होती है जिसके कारण वैवाहिक जीवन पर प्रतिकुल प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु अगर वर–वधु दोनों में से अगर

एक हीं इसके प्रभाव में हो तो दोनों वैचारिक भिन्नता के कारण उनके बीच सामंजस्य बनाना मुश्किल होता है।

5.3.गूढ़ ज्योतिष विज्ञान और वैदिक ज्योतिष की समरुपता :

आज के वैज्ञानिक खोजों के अनुसार हमारे शरीर का बाहरी भाग में आकाशीये पिण्डों के विकिरण से प्राप्त कुछ तरंगों को ग्रहण करने की क्षमता होती है । जैसे त्वचा सूर्य की किरणों में व्याप्त उर्जा से आवश्यक उर्जा को ग्रहण करती है , जिससे शरीर में विटामिन ड़ी० का निर्माण होता है।

इसी प्रकार शरीर का बाहरी भाग ब्रह्माण्ड में उपस्थित ऊर्जातरंगों कों ग्रहण कर , हाईपोथैलेमस नामक ग्रन्थि (मन) को हस्तान्तरित कर देती है। हाईपोथैलेमस इन प्राप्त ऊर्जा तरंगो में से सक्रिय एवं आवश्यक तरंगों का चुनाव कर पियुष ग्रन्थि (धारणा) को हस्तान्तरित कर देती है। पियुष ग्रन्थि इन तरंगो को अलग–अलग करके तथा कुछ को अपने पास रखकर शेष को विनिर्दिष्ट ग्रन्थियो को हस्तान्तरित कर देती है। इस प्रकार इन तरंगों द्वारा सक्रिय होकर ग्रन्थियॉ आवश्यक हॉर्मोन स्रावित करती है। जो रक्त में मिलकर हमारे शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक भावना को प्रभावित करती है।

अगर वैदिक ज्योतिष के अनुसार प्रत्येक ग्रह मे उसके उस समय पर गोचर में स्थिति के कारण विशेष बल होता है। जिसकी गणना ज्योतिष शास्त्र में जातक के जन्म समय प्रत्येक ग्रह की षड़बल गणना से की जाती है। ***वैदिक ज्योतिष शास्त्र में ग्रहबल का मात्रक रुपा है।*** *प्रत्येक ग्रह को सक्रिय रहने के लिये कुछ न्युनतम रुपा की आवश्यकता होती है।*

अगर किसी भी ग्रह को सक्रिय रहने के लिए आवश्यक बल से कम बल प्राप्त है तो उसका अच्छा–बुरा कोई भी प्रभाव मन पर नही पड़ता है। साथ हीं साथ वह जिस भाव का स्वामी होगा ,उस भाव का प्रभाव भी जीवन पर बहुत कम पड़ेगा।

इसी प्रकार अगर किसी ग्रह को सक्रिय रहने के लिए आवश्यक बल प्राप्त हो तो वह भावना पर प्रभाव डालेगा हीं , परन्तु यह सकारात्मक और नाकारात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है। ग्रहों के सकारात्मक अथवा नाकारात्मक प्रभाव जानने के लिए वैदिक ज्योतिष में कष्टफल और इष्टफल ज्ञात किया जाता है। समय विशेष पर सक्रिय ग्रहों के प्रभाव को जानने के

लिय ग्रहों की दशा देखी जाती है। यह देखा जाता है कि उस समय कौन सा ग्रह जीवन को अधिक प्रभावित करेगा, तथा गोचर में ग्रह किस राशि में अवस्थित है। तथा यह भी देखा जाता है कि पंचधा मैत्री के अनुसार उस ग्रह का राशिस्वामी के साथ कैसा संबंध है। इस प्रकार ग्रहों के अनुसार जीवन में आनेवाले समय का पूर्वानुमान किया जाता है।

5.4. ज्योतिषिय उपचार सिद्धान्त :

कुछ लोगों का मानना है कि ज्योतिषिय उपचार **प्लेसबो प्रभाव** के अनुरुप कार्य करती है , जिसके अनुसार मनुष्य का विश्वास उसके मस्तिष्क को प्रोगाम करती है। इस सिद्धान्त के अनुसार ज्योतिषीये सलाह मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं।

1. विशेष पूजन :– पूजन की धारणा से संबंधित ग्रन्थि सक्रिय हो जाती है ।
2. मंत्र जाप :– मंत्र जाप से उत्पन्न कंपन अथवा तरंग संबंधित हॉर्मोन को संतुलन प्रदान करता है ।
3. ग्रह शान्ति उपाय (दान आदि) :– इससे सकारात्मक उर्जा प्राप्त होती है ,जो संबंधित हॉर्मोन को संतुलित करती है ।
4. रत्न धारण :–शरीर में ग्रह संबंधी नाकारात्मक उर्जायों को नियंत्रित करती है।

उपसंहार : ज्योतिष शास्त्र एक वेदांग है जिसे वेद की चक्षु माना जाता है। जो भविष्य का स्पष्ट दर्शन करवाता है। आज के वैज्ञानिक युग में इस विषय पर भी गहन शोध की आवश्यकता है। क्योकि शोध के अभाव में यह लोगों को दिग्भ्रमित कर रहा है। इसके कारण कई लोग सनातन धर्म पर हीं प्रश्न चिन्ह लगाने लगे हैं। आगे के अध्याय में वैदिक धर्म पर संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत की गई है।

इति शुभम्

विमर्श खण्ड

108 Upanishads

1. Isa*
2. Kena*
3. Katha*
4. Prasna*
5. Munda*
6. Mandukya*
7. Taittiri*
8. Aitareya*
9. Chandogya*
10. Brihadaranyaka*
11. Brahma
12. Kaivalya
13. Jabala
14. Svetasva
15. Hamsa
16. Aruni
17. Garbha
18. Narayana
19. Paramahamsa
20. Amritabindu
21. Amritanada
22. Atahrvasirah
23. Atharvasikha
24. Maitrayini
25. Kaushitakibrahmana
26. Brihajjabala
27. Nrisimhatapini
28. Kalagnirudra
29. Maitreya
30. Subala
31. Kshurika
32. Mantrika
33. Sarvasara
34. Niralamba
35. Sukarahasya
36. Vajrasuchika
37. Tejobindu
38. Nadabindu
39. Dhyanabindu
40. Brahmavidya
41. Yogatattva
42. Atmabodha
43. Naradaparivrajaka
44. Trisikhi
45. Sita
46. Yogachudamani
47. Nirvana
48. Mandalabrahmana
49. Dakshinamurti
50. Sarabha
51. Skanda
52. Tripadvibhuti-Mahanarayana
53. Advayataraka
54. Ramarahasya
55. Ramatapani
56. Vasudeva
57. Mudgala
58. Sandilya
59. Paingala
60. Bhiksu
61. Mahat
62. Sariraka
63. Yogasikha
64. Turiyatita
65. Sannyasa
66. Paramahamsaparivrajaka
67. Akshamalika
68. Avyakta
69. Ekakshara
70. Annapurna
71. Surya
72. Akshi
73. Adhyatma
74. Kundika
75. Savitri
76. Atma
77. Pasupata
78. Parabrahma
79. Avadhutaka
80. Tripuratapini
81. Devi
82. Tripura
83. Katharudra
84. Bhavana
85. Rudrahridaya
86. Yoga-kundali
87. Bhasma
88. Rudraksha
89. Ganapati
90. Darsana
91. Tarasara
92. Mahavakya
93. Panchabrahma
94. Pranagnihotra
95. Gopalatapini
96. Krishna
97. Yajnavalkya
98. Varaha
99. Satyayani
100. Hayagriva
101. Dattatreya
102. Garuda
103. Kalisamtarana
104. Jabali
105. Saubhagyalakshmi
106. Sarasvatirahasya
107. Bahvricha
108. Muktika

सनातन धर्म में उपनिषद , ब्रह्मणग्रन्थ ,

आरण्यक आदि वेद विमर्श के द्योतक है ।

—:06:—

वैदिक धर्म
एक जीवन पद्धति

6.1. धर्म और विज्ञान :

ब्रह्मण्ड़ के शाश्वत नियमों (* Eternal law of the Universe *) के अनुपालन करते हुए जीवन पथ पर चलना हीं मानव धर्म है। *ब्रह्मण्ड़ के शाश्वत नियमों को समझने के लिए दो भागों में बाँटा जा सकता है ।*

1. ***ब्रह्माण्ड़ का शाश्वत भौतिक नियम :—*** *भौतिक नियमों का अध्ययन वैज्ञानिक अपने प्रयोगशाला में अनवरत कर रहे हैं, उनका ध्येय मानव के भौतिक जीवन को आसान बनाना है अथवा भौतिक सुख के लिए संसाधनों की खोज करना है।*

2. ***ब्रह्माण्ड़ के शाश्वत आध्यात्मिक नियम :—*** *हमारे ऋषि —मुनि ध्यान की अवस्था में जाकर ब्रह्माण्ड़ के शाश्वत आध्यात्मिक नियमों को जानने का प्रयास करते थे तथा वे अपने आध्यात्मिक अनुभव को सरल सूत्रों के द्वारा व्यक्त करते थे। यही अनुभूत सूत्र कालान्तर में सनातन धर्म के आधार स्तम्भ के रुप में अपनाये गये । उनका उद्देश्य मानव के लिए सम्पूर्ण सुख अथवा परमानन्द के साधनों का खोज करना था। जो मानव द्वारा अनुभूत आनन्द के द्वारा व्यक्त होता है ।*

आनन्दमय जीवन प्राप्त करने के लिए मनुष्य को वैज्ञानिक अविष्कार के साथ—साथ आध्यात्मिक ज्ञान की भी आवश्यकता होती है । तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विज्ञान और आध्यात्म दोनों का उद्‌गम मानव की उस जिज्ञासा से हुआ है—जो सृष्टि के आरम्भ से ही अनुत्तरित प्रश्नों को उत्तरों में बदलने का प्रयत्न करती रही है।

इन्हीं जिज्ञासायों ने कई आध्यात्मिक अवधारणायों का सृजन किया जो कालान्तर में वैज्ञानिकों के लिए अनुसंधान एवं अन्वेषण के द्वार खोले। उदाहरण के लिये पंचभूतों के विनिर्माण प्रक्रिया के सिद्धान्त ने भौतिक विज्ञान

के Quantum Theory *से दुनियाँ को परिचित करवाया। तो हिरण्यगर्भ के ब्रह्माण्ड़ निर्माण की आध्यात्मिक अवधारणा सुप्रसिद्ध ब्रह्माण्ड़ निर्माण के महाविस्फोट सिद्धान्त* (Big Bang Theory) *से जगत का परिचय करवाया।*

आत्मा की खोज में वैज्ञानिकों ने हमें कोशिका, डी.एन.ए.(D.N.A.),*आर.एन.ए.* (R.N.A.)*जैसे चमत्कारी यथार्थ से परिचित कराया। अम्बर में ईश्वर की उपस्थिति की खोज में जब वैज्ञानिकों ने आकाश को टटोला, तो मिथकों के बादल हटे, और चन्द्रयान, मंगलयान जैसे यान उस दिव्य खोज की गवाही बन गए। इसी प्रकार मानव पर पड़नेवाले ग्रह विकिरण प्रभाव को जानने के लिए ज्योतिष शास्त्र ने वैज्ञानिक अनुसंधान सूर्य किरणों से शरीर में बनने वाले विटामिन डी से परिचित कराया।*

इन सत्य की प्रकाश में स्पष्ट होता है – धर्म और आधुनिक विज्ञान अलग नहीं, एक ही साधना के दो स्वर हैं।

धर्म वह विज्ञान है, जो आध्यात्म की कसौटी पर स्थिर होकर, आस्था के रूप में प्रतिष्ठित हो गया; और विज्ञान वह मानव धर्म है, जो निरंतर प्रश्न करता है, एवं जिज्ञासा रुपी दीप के आलोक में सत्य की खोज करता रहता है। किसी भी कालखंड का धर्म, उस युग का सर्वोत्तम स्थापित विज्ञान ही होता है।

आध्यात्म और विज्ञान दोनों ही परम सत्य की तलाश में हैं। विज्ञान जब जानने लगता है, तो आध्यात्म अनुभूति बनकर धर्मसिद्धान्त का निर्माण करती है। आध्यात्मिक अनुभव असंतुष्ट होकर जब चेतना को स्पर्श करती है, तो वह विज्ञान के लिऐ नये खोज का द्वार स्वतः खोल देती है।

*आध्यात्मक और विज्ञान, वास्तव में, दो ध्रुव नहीं–एक ही सत्य को प्राप्त करने की दो विधियाँ हैं। आध्यात्मिक अनुभूति अथवा वैज्ञानिक खोज दोनों के लिये अन्तःप्रेरणा (*Inner inspiration*) की आवश्यकता होती है। ऐसा माना जाता है कि मनुष्य को अन्तःप्रेरणा अतिइन्द्रिये द्वारा प्राप्त होती है।*

6.2. वैदिक धर्म क्या है ?

वैदिक धर्म को हीं सनातन धर्म कहते हैं । सनातन धर्म का आधार–स्तम्भ वैदिक ग्रन्थ हीं है । आधुनिक संनातन धर्म को समझने के लिये वैदिक ग्रन्थों से आधुनिक काल तक की संक्षिप्त टिप्पणी आगे प्रस्तुत की जा रही है।

इसके समुचित अध्ययन के लिये इसे नौ भागों में विभाजित किया जा सकता है:

1. लिपि के विकास के पहले अर्थात श्रुति ।

2. लिपि के विकास के बाद वैदिक ग्रन्थों का संकलन ।

3. वैदिक ग्रन्थों का समसामयिक विश्लेषण ।

4. षड्दर्शन एवं भारतीय धर्मो का उदय ।

5. पुराणों , स्मृतियों एवं महाकाव्यों का संकलन ।

6. सनातन धर्म मुक्तिमार्ग के रुप में **वेदान्त दर्शन ।**

7. सनातन धर्म पर राजनीति और बाहरी धर्मो का प्रभाव।

8. विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित **नव–वेदान्त दर्शन।**

9.आधुनिक सनातन धर्म प्रारुप **सक्रिय घ्यान** (Dynamic Meditation) /

1. लिपि के विकास के पहले अर्थात श्रुति

वेद की व्युत्पति विद् से हुई है। तथा विद् शब्द का साधारण अर्थ है अनुभूत ज्ञान । वेदों को श्रुति भी कहा जाता है । इसका कारण है कि मानव सभ्यता मे जब भाषा का विकास हो चुका था परन्तु लिपि का विकास नहीं हुआ था । तो मानव अनुभूत ज्ञान को बढाने के लिए आने वाले पीढी को उस ज्ञान को कण्ठस्थ करवा देते थे । इसी सुनकर याद रखने की परंम्परा से वैदिक ज्ञान अर्थात ऋषियों द्वारा अनुभूत ज्ञान आगे बढ़ता रहा । इसलिए वेद को श्रुति कहते हैं । वेदों को अपौरुषेय भी कहा जाता है क्योकि इसकी रचना किसी एक पुरुष ने नहीं की है , इसलिए यह कहा जाता है कि वेदों की रचना स्वयं ब्रह्मा ने की है ।

2. लिपि के विकास के बाद वैदिक ग्रन्थों का संकलन

कालान्तर में लिपि के विकास होने के बाद इसे महर्षि वेद व्यास अथवा वदरायण ने श्रुति को चार वेदों के रुप में संकलित किया । इसे मंत्र संहिता भी कहा जाता है । वेद व्यास द्वारा संकलित वेदों की संख्या 4 है :

*1. **ऋग्वेद** :–ऋग्वेद की व्युत्पति ऋत् शब्द से हुई है । ऋत् का अर्थ होता है परम सत्य (Absolute)। अर्थात परम सत्य के खोज में जो अनुभूति सत्यसाधक ऋषियों को प्राप्त हुई , उन्ही अनुभूतियों का संकलन स्तुति के रुप में ऋग्वेद में है । इसके मुख्य देवता अग्नि हैं । क्योकि अग्नि को ज्ञान प्रकाश का पूँज माना जाता है ।*

*2. **ययुर्वेद** :– ययुः शब्द की व्युत्पति यज्ञ शब्द से हुई है । ययुर्वेद में यज्ञ के विधि से संबंधित कर्मकाण्डों को संकलित किया गया है ।*

*3. **सामवेद** :– यज्ञ में मंत्रों के संगीतमय प्रस्तुति के लिये इस ग्रन्थ में संगीत के निर्देशों को संकलित किया गया है ।*

*4. **अथर्ववेद** :– इस शास्त्र में तत्कालिक भौतिक जीवन के में प्रयोग किये जाने वाले तत्कालीन औषधि – तंत्र– जादू–टोना आदि से संबंधित निर्देशों को संकलित किया गया है ।*

वेदों से जुड़े कुछ सामाजिक भ्रांतियों के कारण सनातन धर्म को मानने वाले भ्रमित हो रहें है। सनातन समाज पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ रहा है जिससे सनातन धर्म विरुपित होकर सिमटता जा रहा है। इसका मुख्य कारण है, सामाजिक विरुपता को वैदिकधर्म से जोड़कर सामाजिक विरुपताओं को धर्मसम्मत सिद्ध करने का अज्ञानतापूर्ण तथ्यहीन तर्क प्रस्तुत करना। आगे कुछ प्रमुख भ्रांतियों पर संक्षिप्त विमर्श समग्र विचार हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है।

भ्रांति –1:– महिलाओं को वेदमंत्र का पाठ नहीकरना चाहिए।

ऐसा माना जाता है कि वेद में संकलित मंत्रों के उच्चारण के कारण ध्वनि–तरंगों का का प्रकृति पर विशेष प्रभाव पड़ता है । इसलिए मंत्रों के प्रभाव को महसूस कर मंत्र निर्माण करने वाले ऋषियों को मंत्र द्रष्टा कहा जाता है ।

सनातन धर्म में एक मान्यता प्रचलित है कि महिलाओं को वेद–पाठ नहीं करना चाहिए ,क्योकि वेदमंत्रों के उच्चारण से उत्पन्न ध्वनितरंगों का उनपर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है । परन्तु एक सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि, वेद ऋचायों के निर्माण में कुछ विदूषी ऋचाकार महिलाओं का

अतुलनीये योगदान रहा है। जिन्हे ब्रह्मवादिनी की संज्ञा प्राप्त है। उनमें कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार हैं :

1. लोपामुद्रा –'ऋषि अगस्त्य की पत्नी,

2. अपाला–महर्षि अत्रि की पुत्री थी, इनका विवाह ऋषि कृशाश्व से हुआ था।

3. घोषा–ये बचपन से चर्मरोग से ग्रसित थी ,जिसका निदान होने के बाद उनका विवाह हुआ था, उनके पति का नाम किसी ग्रन्थ में वर्णित नहीं है। परन्तु उनके पुत्र का नाम गंन्थों मे सुहस्त्य बताया गया है।

4. गार्गी–गार्गी एक महान विदुषी थी , जिन्होने शास्त्रार्थ में ऋषि यज्ञवालक्य को पराजित किया था , उनके विवाह के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

5. मैत्रेयी – महर्षि यज्ञवालक्य की पत्नी थी , इत्यादि ।

वास्तव में आध्यात्मिक ज्ञान को प्रगट करने के लिए मंत्रों का निर्माण हुआ था। परन्तु मंत्रों के उच्चारण से उत्पन्न तरंग अपना विशेष प्रभाव प्रदर्शित करते हैं जो नारी के शारीरिक संरचना के अनुसार प्रतिकूल भी हो सकते हैं। इस विषय पर शोध की आवश्यकता है । एक बात तो स्पष्ट है कि जब ब्रह्मवादिनी महिलाओं ने कुछ प्रमुख वेद ऋचायों की रचना की एवं वेदज्ञान के शास्त्रार्थ में भी भाग लिया , तो बिना शोध के महिलाओं द्वारा वेद–पाठ पर प्रतिबंध की बात करना उचित नहीं है।

भ्रांति –2:– वेद सनातन समाज मे प्रचलित असमानता अथवा जातीय व्यवस्था का पोषक है।

अपने भावनायों अथवा ज्ञान को आगे के पीढी तक पहूँचाने के मुख्यतः तीन माध्यम हैं : 1. गद्य के द्वारा , 2. पद्य के द्वारा 3. चित्रण के द्वारा । इन सभी माध्यमो ंके अपनी कुछ विशेषतायें एवं सीमायें हैं ।

1. गद्य के लेखन में अपनी भावनायों को मुक्त रुप से प्रस्तुत किया जा सकता है, अतः इसके माध्यम से पाठक तक ये भावनायें , ज्ञान अथवा संदेश कम से कम विरुपन के साथ समझाया जा सकता है । परन्तु इसे याद करना बहुत कठिन है ।

2. पद्य के निर्माण में लय का ध्यान रखकर कम से कम शब्दों में इसे प्रस्तुत किया जाता है । जिसके कारण लेखक की भावनायें , संदेश अथवा ज्ञान पाठक तक आसानी से पहुँच जाती है , एवं इसे याद रखना भी आसान हो जाता है । परन्तु भावना को लयबद्ध करने के प्रयास में कई वार अर्थ का अनर्थ हो जाता है ।

3. चित्रण के माध्यम से चित्रकार अथवा चलचित्रकार द्वारा प्रस्तुत भावना, ज्ञान अथवा संदेश लोगों तक बहुत आसानी से पहुँच जाती है। परन्तु चित्रण की भी अपनी सीमायें होती है जिसमें संदेश अथवा ज्ञान को पूर्णरुपेण नहीं समेटा जा सकता है । तथा भविष्य में संदेश के विरुपित होने का खतरा बढ़ जाता है , क्योकि यह समसामयिक संकेतों पर आधारित होता है।

ऋगवेद में वर्णित पुरुषसूक्तम् के ११ वें श्लोक को सामाजिक असमानता का पोषक माना जाता है जो इस प्रकार है :

ब्राह्मणोंस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्ययद्वैश्यः पद्भ्यॉ शूद्रोअजायत।।

*आजकल लोग इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार से करतें हैं कि ब्रह्मण का जन्म मुख से , क्षत्रिय का जन्म बाहु से ,वैश्य का जन्म उदर से तथा शुद्र का जन्म पैर से हुआ । जो विल्कुल गलत है । एक साधारण संस्कृत का ज्ञाता भी **ब्राह्मणोंस्य मुखमासीद** का अर्थ यह नहीं बतायेगा कि ब्रह्मण का जन्म मुख से हुआ ऐसा है ।*

*पुरुषसूक्तम् के माध्यम से ब्रह्माण्ड़ की परिकल्पना की गई है। इस श्लोक को अर्थ जानने के उद्देश्य से **ब्राह्मण अस्य मुखम आसित्** पढ़ा जाता है , जिसका भावार्थ है ब्रह्माण्डपुरुष का मुख ब्रह्मण के समान है ।*

वास्तव में इस ग्यारहवें श्लोक को पुरुषसूक्तम् के १० वें श्लोक के उत्तर स्वरुप व्यक्त किया गया है । पुरुषसूक्तम्का दसवाँश्लोक इस प्रकार है :

यत्पुरूषं व्यदघुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किम् बाहूँ किमूरूपादाउच्यते।।

जिसका अर्थ है कि, संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट् पुरुष का ज्ञानी जन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं । उनकी कल्पना के अनुसार,विराटपुरुष

का मुख किस प्रकार का है? विराट् पुरुष की भुजायें किस प्रकार की है ? विराट पुरुष का ऊरू क्या है ? विराट् पुरुष का पाद क्या है ? इस श्लोक के दूसरे भाग पर गौर करने पर स्पष्ट हो जाता है, कि इस श्लोक (11 वें श्लोक) के माध्यम से 10वें श्लोक के प्रश्नों का साकेंतिक उत्तर दिया गया है। परन्तु इस श्लोक (11 वें श्लोक) का अन्तिम भाग ***पद्भ्यॉशूद्रोअजायत*** *सबसे ज्यादा विवादस्पद माना जाता है। क्योंकि इसका शाब्दिक अर्थ है कि पाद(शरीर का निचला हिस्सा) से शूद्रों का जन्म हुआ है। लेकिन यह पुरूषसूक्तम् के दसवें श्लोकके संदर्भ में असंगत प्रतीत होता है। क्योंकि पुरूषसूक्तम् के दसवें श्लोक में प्रश्न हैः* ***किमूरूपादाउच्यते ?*** *जिसका संधिविच्छेद है ,किम् + ऊरू + पाद् + उच्यते जिसका शाब्दिक अर्थ हैं – ऊरू और पाद् को क्या कहा जाता हैं ? इसका उत्तर में पुरूषसूक्तम् के 11 वें श्लोक के अनुसार यह कहा जा सकता है,कि ऊरू को वैश्य तथा पाद को शूद्र कहा जा सकता है।*

इस श्लोक के अर्थ का अनर्थ होने का कारण श्लोक की लयबद्धता की सीमा है । लोगों का मानना है कि अगर ऐसा है तो ***अजायत*** *के स्थान पर दुसरे शब्द का प्रयोग होना चाहिये था । परन्तु कवि अपने भावना को लयबद्ध करने के लिए तत्कालीन मन मे आये शब्द का हीं प्रयोग करते हैं, भविष्य में आनेवाले विवाद का ख्याल उस समय उसके दिमाग में नहीं होता है। पुरुषसूक्त के दसवें प्रश्न के संदर्भ में उत्तर स्वरुप श्लोक का अन्तिम भाग* ***शूद्रोअजायत*** *के स्थान पर* ***शूद्रोच्यते*** *ज्यादा सुसंगत है। इससे ऐसा भी प्रतीत होता है कि किसी कुटिल व्यक्ति ने बड़े चालांकी से* ***उच्यतें*** *के स्थान पर* ***अजायत्*** *शब्द का प्रयोग कालान्तर में कर दिया होगा। अतः वेद के पुरुषसूक्त का सनातन समाज मे प्रचलित असमानता अथवा जातीय व्यवस्था से कोई लेना–देना नहीं है।*

6.2.3. वेदांगः–

विद्वानों ने वेद को समझने के लिये वेद के अनुगमन के पूर्व वेदांग पर अधिकार करने की सलाह दी है । क्योकि वेद श्लोकों मे प्रयुक्त भाषा आज के संस्कृत भाषा से कुछ भिन्न है । अतः आज के संदर्भ में वेद को समझने के छः शास्त्रों का ज्ञान होना आवश्यक है जिसे ***वेदांग*** *कहा जाता है ।*

*1. **शिक्षा :–** वेद श्लोकों के उच्चारण से संबंधित ज्ञान शिक्षा कहलाता है। यह वेदपुरुष की नासिका मानी जाती है ।*

*2. **कल्प :–** धार्मिक अनुष्ठान मे प्रयोग के लिये उचित श्लोक के चुनाव एवं प्रयोग के लिये निर्देश का वर्णन कल्पशास्त्र में होता है । इसे वेदपुरुष का हस्त माना जाता है । इससे संबंधित शास्त्र कल्प शास्त्र कहलाते हैं।*

*3.**व्याकरण :–** वेद के शब्द के व्युत्पति समझकर हीं वेद के श्लोकों का भावार्थ को समझा जा सकता है । वेद के शब्द के व्युत्पति को समझाने वाले शास्त्र को हीं व्याकरण कहा गया है । **प्रथम व्याकरण के रचयिता महर्षि पाणिनि को माना जाता है ।** उनकी रचना का नाम अष्टअध्यायी है। व्याकरण को वेदपुरुष का मुख माना जाता है ।*

*4.**निरुक्त :–** साधारण शब्दों में यह भाषा विज्ञान है । इसके उपयोग से वेद के कठिन शब्दों का निरुपण सरल शब्दों में किया जाता है । निरुक्त को वेदपुरुष का कान माना जाता है ।*

*5.**छन्द** :– वेद मे प्रयुक्त मंत्रों में वर्ण सीमाबद्ध होती है , जिसे छन्द कहतें हैं जैसे गायत्री छन्द। **इसके अध्ययन के लिये उपलब्ध ग्रन्थ को पिंगल नाम से जाना जाता है ।** छन्द को वेदपुरुष का पैर माना जाता है ।*

*6.**ज्योतिष** :– वेदवर्णित कर्मकाण्डों मे मुहुर्त का बहुत अधिक महत्व है। इसे जानने के लिये जिस शास्त्र का उपयोग किया जाता है उसे ज्योतिष शास्त्र कहते हैं । महर्षि भृगु को प्रथम ज्योतिष ग्रंथ भृगु–संहिता का रचयिता माना जाता है । ज्योतिष को वेदपुरुष का चक्षु माना जाता है।*

6.2.4. उपवेदः – *वेदों के अध्ययन के उपरांत विद्वानों ने प्रत्येक वेद के लिए उपवेद की रचना की जो आगे सारणीबद्ध है ।*

	वेद	उपवेद	रचयिता
1	ॠग्वेद	अर्युवेद	धनवन्तरी
2	ययुर्वेद	धनुर्वेद	विश्वामित्र
3	सामवेद	गंधर्व वेद	भरत मुनि
4	अथर्व वेद	शिल्पवेद	विश्वकर्मा

6.2.5 वैदिक ग्रन्थ: *वैदिक ग्रन्थ के अन्तर्गत केवल वेद ही नहीं आते , तीन अन्य प्रकार के ग्रन्थों को भी वैदिक ग्रन्थ के रुप में मान्यता प्राप्त हैः*

1. ब्रह्मणग्रन्थ , 2. आरण्यक , 3. उपनिषद्

ब्रह्मणग्रन्थ :–*ब्राह्मण ग्रन्थों मे वेदवर्णित यज्ञ – अनुष्ठान के विधि अथवा कर्मकाण्ड को संकलित किया गया है । इनमें शतपथ ब्राह्मण–ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इसमे वेदी निर्माण , वलि आदि के बारे मे ं विस्तृत चर्चा की गई है। समाजिक व्यवस्था के अनुसार कर्मकाण्ड कराने वाले विद्वानों को हीं ब्राह्मण की संज्ञा दी गई है।*

आरण्यक :–*इन ग्रन्थों में बानप्रस्थ आश्रम में अथवा वन में रहने वाले ऋषि –मुनि–सन्यासी के आचार –विचार संबधित निर्देशों का संकलन है।*

उपनिषद् *:– इसमें गुरु शिष्य परंपरा से प्राप्त वेदवर्णित गूढ़ ज्ञान के विश्लेषण का विस्तार से वर्णन किया गया है । इसे वेदान्त के नाम से भी जाना जाता है ।*

6.2.6.मौलिक वैदिक सिद्धान्त–*वैदिक ग्रन्थों से तीन मौलिक सिद्धान्तों प्रतिपादित होते हैं।*

1. ***भौतिक संसार सापेक्ष*** **(Relative)*****है ,*** *केवल ब्रह्म निरपेक्ष* (Absolute) *हैं , जो सर्वशक्तिमान हैं । ब्रह्म हीं भौतिक संसार का प्राण अवयव है । इसे प्रणवाक्षर* ***ऊँ*** *से निरुपित किया जाता है । इसके उच्चारण के लिये अनहद् नाद के वर्ण अ+उ+म् का उपयोग होता है। ऊँ अपने आप में एक महामंत्र है जिसके उच्चारण का प्रभाव शरीर, मन, बुद्धि एवं प्रकृति पर सकारात्मक होता है ।* ***सापेक्ष को नश्वर तथा निरपेक्ष को ईश्वर कहते हैं।*** *जिसकी तुलना की जाती है उसे सापेक्ष कहते हैं । जैसे कोई चीज गर्म या ठण्ढ़ी नही होती है, यह किसी अन्य वस्तु के तुलना में गर्म या ठण्ढ़ी होती है ।*

2. ***ब्रह्माण्ड अनन्त तक फैला है*** *। अनन्त ब्रह्माण्ड का प्रत्येक बिन्दू ब्रह्माण्ड का केन्द्र है। जिसका अभिप्राय है कि ब्रह्माण्ड़ का मौलिक तत्व ब्रह्म प्रत्येक स्थान पर विराजमान है। अतः भौतिक संसार में प्रत्येक जड़ ,चेतन में ब्रह्माण्ड़ का मौलिक तत्व ब्रह्म का वास है ।*

*3. **भौतिक संसार में काल के सापेक्ष सबकुछ गतिशील है**– संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है, सबकुछ गतिशील है। भौतिक संसार में प्रतिक्षण बदलाव हो रहा है। **काल ब्रह्म का ही एक स्वरुप है जो वर्तमान को भूत में बदलने की क्षमता रखता है।***

***6.2.7.आस्तिक और नास्तिक** : वैदिक ग्रन्थों के शिक्षा के प्रति अपनी आस्था रखने वाले आस्तिक कहलातें है। तथा जो वैदिक ग्रन्थों के शिक्षा के प्रति अपनी आस्था नहीं रखतें हैं वे नास्तिक कहलातें है। नास्तिक या आस्तिक का किसी धर्म के प्रति आस्था या अनास्था से कोई सम्बंध नहीं है, वल्कि उनका संबंध धर्म के सिद्धान्तों के प्रति आस्था–अनास्था से है ।*

6.3. वैदिक ग्रन्थों का समसामयिक विश्लेषण

वैदिक धर्म के सामाजिक प्रभाव के आंकलन के लिए समसामयिक विश्लेषण करके समय –समय पर ऋषि मुनियों ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। जिसमें कुछ लोगों ने उन वैदिक सिद्धान्तों के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की तथा कुछ लोगों ने अनास्था व्यक्त की। वैदिक ग्रन्थों के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाले मुख्य नौ विचारको को माना जाता है । जिनमें तीन विचारकों का दृष्टिकोण नास्तिक का है तथा छः विचारकों का दृष्टिकोण आस्तिक का है ।

नास्तिक दृष्टिकोण

1. चर्वाक दर्शन 2. बौद्ध दर्शन 3.जैन दर्शन

आस्तिक दृष्टिकोण

1. साख्य दर्शन – कपिल मुनि , 2. योग सूत्र – महर्षि पतंजलि

3. न्याय सूत्र – अक्षपाद् गौतम मुनि 4. वैशेषिक सूत्र – महर्षि कणाद्

5. मीमांसा – महर्षि जैमिनि 6. ब्रह्मसूत्र – आचार्य वद्रायण ।

इन्ही छः आस्तिक दृष्टिकोण को षड़्दर्शन के नाम से जाना जाता है ।

भारत में प्रचलित सनातन वैदिक धर्म अथवा हिन्दू धर्म का आधार षड़्दर्शन को हीं है ।

6.4. भारतीय धर्मो का उदय :

भारत में उदित होनेवाला कोई भी धर्म इन्हीनौ दर्शनों से प्रभावित होता है। चाहे वह सिख धर्म हो अथवा कबीरपंथ । चाहे वह सगुण ब्रह्म को मानता हो अथवा निर्गुण ब्रह्म को । उपर्युक्त नौ दर्शनो का प्रतिफल के रुप में मुख्यतः दस सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं :

1. आत्मा के अमरता का सिद्धान्त

2. पुनर्जन्म का सिद्धान्त

3. पंचतत्वों का सिद्धान्त

4.सृष्टि के त्रिगुणात्मक सिद्धान्त

5. जगत की सत्यता का सिद्धान्त

6. दूखःमय जगत का सिद्धान्त

7. मोक्ष हीं परम सुख है का सिद्धान्त

8.अवतार का सिद्धान्त

9. कर्मफल का सिद्धान्त

10.मोक्ष के पॉचमहॉमार्ग ज्ञानयोग, कर्मयोग , क्रियायोग , घ्यानयोग एवं राजयोग का सिद्धान्त

भारत में चाहे किसी भी धर्म का उदय हुआ हो वे इन्ही 10 सिद्धान्तों मे से कुछ सिद्धान्तों को अपनाकर हुआ है।

6.5. पुराणों एवं स्मृतियों एवं महॉकाव्यों का संकलन

भारत में व्याप्त हिन्दू धर्म में इन्हीं सिद्धान्तों को सोदाहरण समझाने के लिए देवताओं को आधार बनाकर समसामयिक सामाजिक स्वरुप को ध्यान में रखकर पुराणों की रचना हुई । जब सामाजिक व्यवस्था में राजाओं महाराजाओं का प्रादूर्भाव हुआ तो का राजनीतिक अनुशासन बनाये रखने के लिये स्मृतियों की रचना की गई जिसमें से मनुस्मृति के कुछ प्रबंध को लेकर आजकल बहुत विरोधाभाष है। कालान्तर में महाकाव्य रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों की रचना हुई , जिसमें भगवान के अवतार को नायक बताया गया। हमें ध्यान रखना चाहिए कि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के अनुसार मनुस्मृति की रचना की गई थी , जब राजनीति और धर्म को एक हीं माना जाता था। रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थों में भगवान के अवतार को धर्म की पुनःस्थापना के हेतु माना गया है। आज की परिस्थितियॉ अलग है, कई सनातन धर्म को मानने वाले पौराणिक ग्रन्थों के मूल भाव को न समझकर

भगवान अथवा भगवान के अवतार पर प्रश्नचिन्ह लगातें है। जबकि विश्वव्याप्त सभी धर्म भगवान के स्वरुप के अवतार के द्वारा ही प्रतिपादित मानतें है। कहा गया है:

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनंद्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

अर्थात 18 पुराणें में एक हीं सत्य बताया गया है कि परोपकार पुण्य का काम है तथा दूसरे को पीड़ा पहूँचाना हीं पाप है।

*भारत में उदित सभी धर्मो का मूल वेद हीं है जिसमें से **हिन्दू धर्म वेद के षड्दर्शन पर आधारित है ।** जबकि बौद्ध धर्म और जैन धर्म के अलग दर्शन है। फिर भी **तीनों धर्मपद्धति मोक्ष अथवा निर्वाण को जीवन का परमलक्ष्य मानतें हीं है।***

कालान्तर में बौद्धधर्म और हिन्दू धर्म के अनुयायी अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए एक दुसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करने लगे। ज्ञान के अभाव में हिन्दूओ को हिन्दू धर्म कमतर प्रतीत होने लगा फलस्वरुप लोग बौद्ध धर्म अपनाने लगे। जिसके कारण हिन्दूधर्म लुप्तप्राय हो गया । उस समय भारत के पवित्र भूमि पर परमपूज्य आदि शंकराचार्य का जन्म हुआ । इन्होने अनेक ग्रन्थों के अध्ययन के उपरांत हिन्दूधर्म के भटके हुये लोगों को सनातन मार्ग पर लाने के लिए वेदान्त का सहारा लिया। इस संदर्भ में मंड़न मिश्र और आदिशंकराचार्य की शास्त्रार्थ की कथा भारत में प्रचलित है ।

6.6. सनातन धर्म मुक्तिमार्ग के रुप में वेदान्त दर्शन

*आदिशंकराचार्य ने वेदान्त दर्शन के आधार पर अद्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया , और ''**तत् त्वम् असि**'' तथा ''**ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या**''को सूत्रवाक्य बनाया। उन्होने इसके लिए श्रीमद्भगवद्गीता को वेदान्त का सार बताते हुये ज्ञान मार्ग को मुक्ति का आधार बताया। आज भी श्रीमद्भगवद्गीता सारे संसार में शांति फैलाने वाले ग्रन्थ के रुप में जाना जाता है । अद्वैतवाद मे ज्ञान को सबसे अधिक प्रमुखता दी गई थी।*

*सूत्रवाक्य ''**तत् त्वम् असि**'' का साधारण अर्थ है कि तुम स्वयं ब्रह्मस्वरुप हो। इसका लोगों ने यह प्रश्न किया कि जब हम स्वयं हीं ब्रह्म हैं तो हमें किसकी पूजा करनी है। इस सूत्रवाक्य का भावार्थ है कि भगवान की खोज में कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक जीव का जन्म का कोई न कोई*

प्रयोजन है। अतः अपने से अलग भगवान को ढूढ़ँने में समय बर्वाद करने से ज्यादा उचित है अपने जन्म के प्रयोजन के अनुसार सुकर्म करना ।

इसी प्रकार ***ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या*** *का साधारण अर्थ है कि ब्रह्म को छोड़कर सारा संसार मिथ्या है। इस सूत्रवाक्य का अभिप्राय है कि सत्य (जो कभी नहीं बदलता) तो केवल ब्रह्म अथवा ईश्वर है। इसके अलावा जो कुछ भी है वह असत्य अथवा मिथ्या के समान सदा बदलनेवाला अथवा नश्वर है।*

आदि शंकराचार्य के समय हीं भारत में इस्लाम का आगमन आरम्भ हो गया था। उसके बाद अन्य कई बाहरी धर्म भी अपना प्रचार–प्रसार के लिये भारत में साम–दाम–दंड–भेद के नीति को अपनाकर सनातन धर्म की गलत व्याख्या कर सनातन धर्म के प्रति लोगों को भ्रमित किया ।

अद्वैतवाद के भ्रम का निराकरण के लिए बाद में रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत, माधवाचार्य ने द्वैत तथा निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत इत्यादि दर्शन का प्रतिपादन किया। जिसके कारण सनातन धर्म का स्वरुप विरुपीत होने से बचा रहा ।

6.7. सनातन धर्म पर विदेशी धर्मो का प्रभाव

सनातन धर्म पर विदेशी धर्मो का बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा , यह जरुर हुआ कि विदेशी धर्मो के प्रचारकों ने लोगों को सनातन धर्म के प्रति लोगों को भ्रमित कर धर्मान्तरण जरुर कराया । परन्तु भारत में सनातन धर्म की दर्शन इतनी प्रभावशाली है कि अन्य विदेशी धर्म भी सनातन धर्म से प्रभावित हुए। धर्मान्तरण को धर्म प्रभावित करने वाला नहीं कहा जा सकता क्योकि संसार में धर्मान्तरण राजनीतिक कारणों से साम–दाम–दण्ड–भेद का उपयोग कर लोगों को भ्रमित कर कराया जाता रहा है। सनातन धर्म के दशर्न को निरस्त करके नहीं। समय के साथ परिवर्तन निश्चित है। यह परिवर्तन अच्छा–बुरा दोनों प्रकार का हो सकता है । विदेशी धर्मों के प्रभाव के कारण सनातन धर्म पर पुनः विचार की आवश्यकता समय समय पर होती रही है जिससे इसकी मौलिकता बनी रहे। इस दिशा में अनेक प्रयास होते रहे हैं , और लोगों का दृष्टिकोण आवश्यकताके अनुसार बदलता रहा है। ***स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो के धर्म सभा में सनातन धर्म के दर्शन के श्रेष्ठताओं को दुनियॉ के पटल पर रखकर सनातन धर्म को दुनियाँ के श्रेष्ठतम् धर्म में स्थान निश्चित कराया ।***

***6.8. नव–वेदान्त दर्शन** :–स्वामी विवेकानन्द ने सनातन धर्म की जड़ता को समाप्त करने के लिय नव–वेदान्त दर्शन का प्रतिपादन किया । नव–वेदान्त दर्शन में उन्होने धर्म के साथ राष्ट्र (जननी– जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि) को भी समाहित किया क्योकि आज के परिपेक्ष्य में हम सुखी–समृद्ध तब हीं रह सकतें हैं जब हमारा राष्ट्र समृद्ध हो।*

6.9.आधुनिक सनातन धर्म प्रारुप :–

आधुनिक समय में प्रायः लोगों में सनातन धर्म प्ररुप को लेकर अनेक भ्रान्तियाँ है। परन्तु गौर करने पर पता चलता है कि आज भी मानव मन में सनातन धर्म सिद्धान्त के रुप में श्रीमद्भगवद्गीता प्रतिपादित कर्म सिद्धान्त हीं व्याप्त है । कर्म सिद्धान्त के दो पक्ष हैं :– 1. नियतिवाद, 2. विचार स्वतंत्रता

***नियतिवाद** –नियतिवाद के अनुसार संसार की प्रत्येक धटना को करानेवाला कोई और है तथा प्रारब्ध के कारण लोगों पर उसका अलग अलग प्रभाव पड़ता है। अतः मनुष्य के साथ जो कुछ घटित होता है वह उसका प्रारब्ध अथवा पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। सनातन धर्म के लोग प्रायः इस सिद्धान्त से सारी अच्छी–बुरी घटनाओं की व्याख्या कर देतें हैं । पौराणिक कथाओं में भी इस सिद्धान्त पर बहुत बल दिया गया है । इसे भाग्यवाद भी कहा जाता है।*

***विचार स्वतंत्रता**–सनातन धर्म के प्रमुख ग्रन्थ **श्रीमद्भगवद्गीता** का स्पष्ट कथन **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** से स्पष्ट होता है कि , मनुष्यका कर्म पर अधिकार है , अतः अपने विवेक के अनुसार निर्णय लेने का अधिकार मनुष्य के पास है। इसे विचार स्वातंत्रय* (Free will)*का सिद्धान्त कहा जाता है । आधुनिक सनातन धर्म का स्वरुप इसी सिद्धान्त पर आधारित है । साधारण शब्दों मे कहा जा सकता है कि आधुनिक धर्म सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य अपने अच्छे–बुरे का निर्णय स्वयं सोच–समझकर लेता है , इसमें प्रारब्ध की कोई विशेष भूमिका नहीं होती है। अतः किसी भी कर्मफल का जिम्मेवार मनुष्य का वर्तमान भी होता है , केवल प्रारब्ध नहीं। प्रारब्ध की भूमिका मनुष्य के जन्म पर होती है , जिसके कारण वह माता–पिता–गुरु ,समाज, मित्र , शत्रु आदि पाता है, जो उसके जीवन पथ के सहयोगी अथवा विरोधी होते हैं। मनुष्य अपने जीवनपथ का निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है। इसमे किसी का हस्तक्षेप नहीं होता है ।*

6.10. सनातन धर्म अथवा हिन्दू धर्म का स्वरुप निर्धारण।

सनातन धर्म के स्वरुप का निर्धारण का मुख्य दर्शन यह है कि संसार नश्वर एवं दुःखमय है तथा ईश्वर सुख का मुख्य श्रोत है।

*इस दर्शन के अनुसार संसार में दुःख हीं दुःख है , क्योकि भौतिक सुख पाने के लिए भी बहुत दुःख झेलना पड़ता है, साथ हीं साथ भौतिक प्राप्त सुख बनाये रखने के लिए चिन्ता एवं प्रयास भी दुःख हीं प्रदान करता है। अतः नश्वर संसार से सुख की कामना हीं असंगत है । अतः सुख की कामना सिर्फ ईश्वर से की जा सकती है । श्रीमद् भगवद्गीता (9.22) में श्री कृष्ण के द्वारा कहा गया है **(योगक्षेमंवहाम्यहम्)** जिसका भाव है कि, जो ईश्वर की शरण में जाता है उसके **योग**(जीवन के सभी भौतिक अथवा आध्यात्मिक अप्राप्त आवश्यकताओ की पूर्ति) तथा **क्षेम** (प्राप्त की रक्षा)का का दायित्व ईश्वर अपने उपर ले लेते हैं।*

अब प्रश्न है कि संसार में रहते हुए ईश्वर के शरण में कैसे जाया जा सकता है । इसका उत्तर बहुत हीं सरल है । भौतिक नश्वर बस्तुओं को पाने की ईच्छा आसक्ति कहलाती है , तथा ईश्वर के शरण में रहने की इच्छा प्रेम कहलाती है । आसक्ति बंधन का कारण है और प्रेम मुक्ति का पथ है। इसलिए यह कहा जाता है कि प्रेम हीं ईश्वर है। अतः संसार के प्रति आसक्त न होकर संसार से प्रेम करना हीं ईश्वर के शरण में रहना है।

सनातन धर्म के दर्शन के अनुसार सबसे प्रेम करना हीं सनातन धर्म का मूल मंत्र है। सनातन धर्म का मौलिक प्रारुप प्रेम–आधारित है। इसके तीन नीति–निर्धारक तत्व हैं।

1. स्वयं से प्रेम – इसके दो पहलु हैः

- ***स्वास्थय रक्षा–स्वास्थ रक्षा के लिए आंतरिक एवं वाह्य शुद्धि आवश्यक है।***

इसके लिए सनातन धर्म में सुपाच्य भोजन(सात्विक) – व्रत– उपवास एवं नित्य संध्या पूजन (पंचकर्म–प्राणायाम–सक्रिय ध्यान) की व्यवस्था दी गई है। पूजन में कर्मकाण्ड सक्रिय ध्यान का हीं स्वरुप है ।

(आचार्य रजनीश के द्वारा प्रस्तुत सक्रिय ध्यान–Dynamic Meditation जीवन के प्रत्येक क्रिया में ध्यानयुक्त रहने की बात करता है । इस प्रकार के

ध्यान से जीवन के सफलता प्राप्त होती है । इसके लिए एक जगह बैठकर श्वासों एवं विचारों पर पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य बिनोवा भावे भी सफलता प्राप्त करने के लिये अपने प्रत्येक कर्म को ध्यान से करने की सलाह देतें है। इससे मन अपने–आप एकाग्र हो जाता है , अपने कर्म को छोड़कर अन्य विचार मन में आती हीनहीहै ।)

- ***आत्म रक्षा***–*आत्मरक्षा बहुत महत्वपूर्ण विषय है । इसके अंर्तगत दुश्मनों से अपने अस्तित्व के रक्षा की बात आती है । किसी के अस्तित्व को मिटाने के लिए दुश्मन दो प्रकार से आघात करतें हैं:*

  1. बौद्धिक आक्रमण के द्वारा ***2. भौतिक आक्रमण के द्वारा***

- ***बौद्धिक आक्रमण – इस आधात से निवटने के लिए सनातन धर्म में एकता बनाये रखने के लिए त्योहार एवं ज्ञान को परिमार्जित करने के लिए शास्त्र–अध्ययन का प्रावधान है।***

आजकल धर्मान्तरण बौद्धिक आघात का हीं प्रतिरुप है । क्योकि अध्ययन के प्रति लोगों की जागरुकता कम हुई है। अतः अपने अस्तित्व को बचाने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। सनातन धर्म में इसके लिए शास्त्रार्थ , प्रवचन आदि का प्रावधान है । पौराणिक ब्राह्मण वे योद्धा थे जो बौद्धिक आक्रमण से सनातन धर्म की रक्षा की और सूत्रवाक्य दिया ***"धर्मम् रक्षति रक्षतः"*** *।*

- ***भौतिक आक्रमण–इस आधात से निवटने के लिए सनातन धर्म में शस्त्रों के प्रशिक्षण का प्रावधान है।***

प्राचीन गुरुकुल में शस्त्र और शास्त्र दोनो सिखाया जाता था । जिससे प्रत्येक व्यक्ति आत्मरक्षा करने में सक्षम हो। पौराणिक क्षत्रिय वे योद्धा थे जो भौतिक आक्रमण से सनातन धर्म की रक्षा की ।

इसकी आवश्यकता लोगों को धार्मिक तीर्थयात्रा में होती थी। क्योकि तीर्थयात्रा अनेक संभावित खतरे से भरे होते थे। आजकल सनातन धर्म से शस्त्र शिक्षा को लगभग समाप्त कर दिया गया है। एक मिथ्या फैलाई गई है, कि सनातन धर्म में अहिंसा प्रमुख है। तथ्य यह है कि सनातन व्यवस्था मन की शांति प्रमुख है। जिसका स्वरुप रामराज्य के रुप में प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु रामराज्य लाने के लिए रावण से युद्ध करना हीं पड़ता है।

विद्वानों का मानना है कि युद्ध से बचने का एकमात्र उपाय है युद्ध के लिए सदैव तैयार एवं सचेत रहना । दुश्मन आक्रमण तब हीं करतें हैं जब हम युद्ध के लिए तैयार नहीं होते हैं। तथा कोई धोखा तब हीं देता है जब हम सचेत नहीं रहते हैं।

2. यज्ञ– संसार से प्रेम (बसुधैव कुटुम्बकम्) :–_संसार से प्रेम अथवा बसुधैव कुटूम्बकम का अर्थ है अहिंसक (किसी को भी शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट नही पहुँचाना) होना ।_

परन्तु संसार में जीवन–यापन में पूर्ण अहिंसक होना संभव नही है। जैसे जीवनरक्षा हेतु परमावश्यक आवश्यकता भोजन के लिए भी जाने –अनजाने हिंसा हो हीं जाती है । इसके लिए सनातन धर्म में प्रायश्चित रुपी यज्ञ का प्रावधान है।

यज्ञ शब्द संस्कृत के ***यज्*** *धातु में* ***नङ्*** *प्रत्यय के उपयोग से बना है।* ***यज्*** *का अर्थ है याचना करना, तथा यज्ञ का अर्थ है अपने द्वारा जाने–अनजाने में किये गये हिंसक कर्म (किसी को भी मन,कर्म,बचन से आहत करना) के परिमार्जन हेतु , याचना अथवा समर्पण करना होता है।*

अग्नि को ईश्वर तक संदेश पहुँचाने का माध्यम तथा स्वाहा को ईश्वर का संदेशवाहक माना जाता है। इसी प्रकार जल को पितृ तक संदेश पहूँचाने का माध्यम तथा स्वधा को पितृ का संदेशवाहक माना जाता है। ईश्वर के समक्ष समर्पण को आहुति कहतें है।

यज्ञ दो प्रकार के होते हैं : 1. नित्य यज्ञ 2. नैमितिक यज्ञ

- ***नित्य यज्ञ :– सनातन शास्त्रों ने पाँच प्रकार के नित्य यज्ञ का अनुशासन बताया गया है:***
    - ❖ ***ब्रह्म यज्ञ –***_स्वअध्याय के प्रति सर्मपण को ब्रह्मयज्ञ कहा जाता है। संध्या पूजन भी ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत माना जाता है।_
    - ❖ ***पितृयज्ञ –***_अपने से श्रेष्ठ का सम्मान अथवा सेवा कर अपने पूर्वजों का सम्मान बढ़ाने हेतु समर्पण को पितृयज्ञ के अन्तर्गत माना जाता है।_

❖ ***देवयज्ञ*** *–देव का अर्थ होता है देनेवाला , सनातन धर्म में देनेवाले को देवता कहा जाता है । देवताओं के तृप्ति हेतु अग्नि में अर्पित आहुति देवयज्ञ का स्वरुप है । जरुरतमन्द को अपने सामर्थ्य के अनुसार यथयोग्य दान अथवा नैतिक सहारा देना देवयज्ञ के अन्तर्गत हीं माना जाता है।*

❖ ***अतिथि यज्ञ*** *–अतिथि को देवस्वरुप मानकर पूर्ण श्रद्धा के साथ सम्मान को अतिथि यज्ञ कहतें हैं।*

❖ ***वलिवैश्वदेव यज्ञ*** *–इसे भूत यज्ञ भी कहा जाता है । संसार के भौतिक प्राणियों का ध्यान रखकर कर्म करना वलिवैश्वदेव यज्ञ माना जाता है। जड़–चेतन प्राणियों हेतु समर्पण जैसे पौधों को पानी देना, गाय आदि जानवरों को चारा देना ,चिट्टियों को शक्कर देना, चिड़ियों को दाना–पानी आदि का समर्पण वलिवैश्वदेव यज्ञ के अर्न्तगत हीआता है।*

- ***नैमितिक यज्ञ*** *:–किसी विशेष प्रयोजन से किया जानेवाला यज्ञ नैमितिक यज्ञ कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है:*

1. अनुष्ठान *–किसी प्रयोजन के आरम्भ में प्रयोजन की सफलता की कामना से आयोजित यज्ञ को अनुष्ठान कहते हैं। इसके अर्न्तगत अजवलि* ***(अज–इस शब्द की उत्पत्ति जय में अ उपसर्ग लगने से हुआ है जिसका अर्थ है जय अथवा सफलता में विघ्नकारक तत्व जिसे षड़दोष के नाम से जाना जाता है , तथा वलि का अर्थ है त्याग अथवा समर्पण, अतः अजवलि का अर्थ है उन तत्वों का त्याग जिसके कारण प्रयोजन के सफलता में विध्न की संभावना हो)*** *आता है। अनुष्ठान का सामान्य अर्थ किसी कार्य से पूर्व ईश्वर का ध्यान करना अथवा पूजा–पाठ करना है । सनातन संस्कृति में मनुष्य जीवन में* ***षोड़ष संस्कार*** *का समाज में बहुत महत्व है। अतः इन* ***षोड़ष संस्कारों*** *में अनुष्ठान रुपी यज्ञ भारतीय हिन्दू समाज में विशेष रुप से प्रचलित है। सनातन विवाहादि में होनेवाला यज्ञ इत्यादि अनुष्ठान–यज्ञ के हीं प्रारुप है।*

सामान्य जीवन में अनुष्ठान का मुख्य उद्देश्य है। सफलता के लिये ***षड़दोषो*** *(आलस्य, दीर्धसूत्रता, आसक्ति , क्रोध, लोभ, ईर्ष्या) पर नियंत्रण प्राप्त करने हेतु समर्पण करना। उपनिषदों में* ***काम, क्रोध, लोभादयः पशवः*** *कहा गया है। जिसका अभिप्राय है काम–क्रोध–लोभादि बन्धन के कारक हैं क्योकि ये*

आसक्ति उत्पन्न करतें है। ***सनातन विवाह में आसक्ति के स्थान पर प्रेम को स्थान दिया जाता है एवं पति–पत्नी के बीच सदैव प्रेम बना रहे इसी कामना से विवाह का अनुष्ठान यज्ञ किया जाता है।*** *सनातन धर्म में प्रचलित गौरी–शंकर , राधा–कृष्ण आदि की कथाए विवाह को प्रेम बन्धन के रुप में स्थापित करती है।*

2. पूर्णाहूति :– *इस प्रकार का यज्ञ प्रयोजन में सफल होने के बाद प्रयोजन के समापन स्वरुप में ईश्वर के सहयोग के प्रति पूर्ण आभार व्यक्त करने के लिए किया जाता है। भारत में फसल उत्पादन के उपरांत मनाये जाने वाले त्योहार , पौराणिक ग्रन्थों में वर्णित अश्वमेध यज्ञ , राजसूय यज्ञ पूर्णाहूति यज्ञ के प्रारुप हैं। सनातन संस्कृति में किसी भी अनुष्ठान के उपरांत समापन पूर्णाहूति की परंपरा है। पूर्णाहूति के रुप में यह मानकर समर्पण किया जाता है कि सब कुछ ईश्वर का है, मेरा कुछ भी नहीं है। ईश्वर ने जो कुछ मुझे प्रदान किया है , उसपर भी केवल ईश्वर का हीं अधिकार है ।*

6.10. यज्ञ में बलिप्रथा :

कुछ वैदिक ग्रन्थों में यज्ञ में पशुवलि देने की बात की गई है। परन्तु जब सनातन धर्म का आधारभूत अंग अहिंसा अथवा बसुधैव कुटूम्बकम् है तो सनातन धर्म में पशुबलि का प्रावधान तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है।

महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है

ऋषयः ऊचुः–

बीजर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अज संज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हष।।

इसका अर्थ है वैदिक ग्रन्थों मे बीज के उपयोग को यज्ञ के लिए यथेष्ट माना गया है। यहाँ अज संज्ञा वाले बीज का अर्थ अजन्म बीज है । इसलिए यज्ञ में छाग(बकरे) का वध का कोई अर्थ नहीं है।

पंचतंत्र के एक कहानी में यह व्यंग किया गया है कि अगर पेड़ काटकर, पशु को मारकर , लहू का कीचड़ बनाकर स्वर्ग प्राप्त किया जाता है तो नरक किसे प्राप्त होता है ।

बलि प्रथा आज भी कई क्षेत्रों में लौकिक स्थानीये नियमों के अनुसार प्रचलन में हैं। परन्तु कुछ प्रगतिशील ब्रह्मणों एवं प्रबुद्ध जनोंके प्रयास से कई स्थानो पर बलि प्रथा बन्द हो गई है ।

इसका एक उदाहरण राँची में मेनरोड़ स्थित काली माता मंदिर है । मैने इस मंदिर के पुजारी श्री अवधेश मिश्र , श्री सुरेश मिश्र एवं श्री ब्रजेश मिश्र से किसी अवसर पर प्रश्न किया कि प्रायः प्रत्येक काली माता के मंदिर में पशुबलि की प्रथा है , तो क्या इस काली मंदिर में भी बलि की प्रथा है । उन्होने बहुत रोचक बात बताई।उन्होने बताया कि उनके पूर्वजो ने काली मंदिर में पशुबलि प्रथा को बहुत विरोध के उपरांत शास्त्रार्थ के बाद बंद कराया। शास्त्रार्थ में एक बात उभरकर आई कि काली माता को प्रसन्न करने के लिये पशुबलि आवश्यक है । क्योकि माता का क्रोध पशुबलि से बहने वाले लहू को देखकर हीं शान्त होता है। इसके बाद प्रश्न किया गया कि माता क्रोधित हीं क्यो होती है ? इसका उत्तर में बताया गया कि जब कोई भी अनैतिक कार्य होता है, तो माता क्रोधित हो जाती है। अब प्रश्न आया कि लोग अनैतिक कार्य क्यो करतें है ? तो इसका उत्तर आया कि लोग अज्ञानवश अनैतिक कर्म करतें हैं।

मॉ काली प्रतिमा
मेन रोड रॉची)

इसके उपरांत उपर्युक्त पुजारी के पूर्वज शास्त्र का सदर्भ देते हुये बताये कि अज्ञान को दूर करने के लिये शास्त्रों में दीपक (ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाला) जलाने का प्रावधान बताया गया है। अतः अगर अखण्ड़ दीप माता काली के समक्ष जला दिया जाये तो उनके शरण में आये लोग उस दीप से प्राप्त ज्ञान आलोक के कारण अनैतिक कर्म हीं नहीं करेंगें इसलिये माता क्रोधित भी नहीं होंगी । अतः माता के समक्ष पशुबलि की आवश्यकता नहीं है। वल्कि पशुबलि के स्थान पर अखण्ड़ दीप जलाने की आवश्यकता है । तब से माता काली के

श्री अवधेश मिश्र

श्री सुरेश मिश्र

श्री व्रजेश मिश्र

पास अखण्ड़ दीप जल रहा है। दीपक प्रज्वलित करने की बातें ऋग्वेद के प्रथम श्लोक से भी स्पष्ट रुप से समर्थित हैं । उस श्लोक का प्रथम पद्य है " ***ऊँ अग्निमीळे पुरोहितम्"*** *मेरे विचार में (इसका अर्थ कई विद्वानों के विचार जानने के उपरांत) इस श्लोक का अर्थ होना चाहिये कि मैं अग्नि स्वरुप ज्ञान के प्रकाश की उपासना करता हूँ जिसमें पुर अर्थात संसार का हित समाहित है ।*

एंतरेय ब्राह्मण 2.2.21 के अनुसार

पशुभ्यो वै मेघ उदक्रामंस्तौ ब्रीहिश्चैव यवश्चभूतावर्जयाताम्

इसका अर्थ है पशुओं के मेध(हवनीय तत्व)पृथ्वी में चला गया जो चावल और जौ के रुप में पृथ्वी से प्रगट हुआ । अतः शास्त्र मतानुसार पशुबलि के स्थान पर पुरोड़ाश (जौ के आँटे की गोली अथवा रोटी) तथा हविष्य (चावल और दूध से बना खीर) की आहुति देने की प्रथा है ।

कई वार यह भ्रम हो जाता है कि पुराणों में जो नरमेध ,अश्वमेध , गोमेध, इत्यादि यज्ञों का वर्णन है उन यज्ञों में नरबलि , अश्वबलि, वृषबलि इत्यादि का प्रावधान था । परन्तु विद्धानों का मानना है कि मेध का अर्थ बलि नहीं है। मेध का अर्थ है मेधा शक्ति जो यज्ञ में समर्पित करने से प्राप्त होता है। ***नर अहंकार का द्योतक है अतः नरमेध यज्ञ का आशय है अहंकार के समर्पण से प्राप्त मेधाशक्ति। अश्व शक्ति के दुरूपयोग का द्योतक है अतः अश्वमेध का अर्थ है शक्ति के दुरुपयोग का त्याग से प्राप्त मेधाशक्ति। गो का अर्थ होता है इन्द्रिय अतः गोमेध का अर्थ है इन्द्रियों पर नियंत्रण से प्राप्त मेधाशक्ति ।***

वैदिक ग्रन्थों के अध्ययन से यह तो स्पष्ट है कि यज्ञ का अभिप्राय आसक्ति का त्याग कर परमानन्द अथवा प्रेम के ओर कदम बढ़ाना है ।

6.11. लोग सनातनधर्म विरुद्ध आचरण क्यो करतें हैं ?

एक महत्वपूर्ण प्रश्न साधारण दिमाग में आता है कि जब सनातन धर्म जीवन जीने की स्वतःस्फूर्त पद्धति है ,तो लोग धर्मविरुद्व आचरण हीं क्यों करतें हैं ? इसे आज के सामाजिक परिस्थिति के अनुसार समझा जा सकता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अब्राहम मास्लो आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त में इसी पहलू का व्यवहारिक निरुपण करते हुए कहते हैं कि मानवीय आवश्यकताये पाँच स्तरों में विभजित है। जब निचली आवश्यकता पूरी हो जाती है, तब व्यक्ति उच्च आवश्यकता की ओर बढ़ता है। वे आवश्यकताएँ इस प्रकार है :

1. शारीरिक आवश्यकताएँ (Physiological needs) :– इसके अन्तर्गत भोजन , पानी , नींद इत्यादि आती है ।
2. सुरक्षा की आवश्यकताएँ (Safety needs) :– इसके अन्तर्गत आवास, रोजगार, स्वास्थ्य , संपत्ति , कानुन व्यवस्था इत्यादि आती है।
3. सामाजिक आवश्यकता (Social needs) :– इसके अन्तर्गत मित्र, समाज ,पत्नी , संतान इत्यादि आतें है।
4. सम्मान की आवश्यकता (Esteem needs) :– इसके अन्तर्गत धर्म पालन , आत्म सम्मान , दुसरों से सम्मान पाने की इच्छा इत्यादि आती है।
5. आत्म साक्षात्कार की आवश्यकता(Self Actualization needs):– इसके अन्तर्गत अपने क्षमतायों को पहचानना इत्यादि आता है।

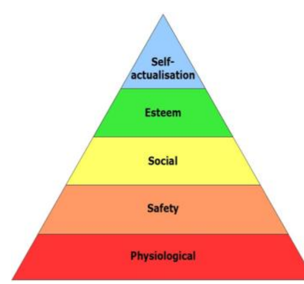

संसार में उपर्युक्त तीसरी स्तर तक की आवश्यकता तो सभी (मानव–पशु पक्षी इत्यादि) को होती है । जब तक पहली तीन (भोजन,सुरक्षा और परिवार) आवश्यकतायें पूरी नहीं होती , मनुष्य नैतिकता या धर्म की ओर अग्रसर हीं नहीं हो पाता है। उदाहरण के लिए कोई भूखा मनुष्य नैतिकता अथवा धर्म की नहीं सोच सकता है । वह पहले अपनी भूख मिटाने के बारे में सोचेगा। भूख मिटाने का तरीका नैतिक या अनैतिक कुछ भी हो सकता है। अधिकांश लोग पहले तीन स्तरों की आवश्यकता की पूर्ति पर अटके हुए हैं। जबतक वे अपने आवश्यकताओं की प्राथमिक तीन स्तर के दायित्वों का निर्वहण में सक्षम नहीं हो जाते , वे धर्म के बारे में सोंच भी नहीं पाते हैं । इसलिए ज्यातर लोगों द्वारा ''**धर्म और नैतिकता**'' केवल समाज और कानून के डर से निभाई जा रही है,''**स्वतः–स्फूर्त चेतना" से नहीं।**

धर्मविरुद्ध आचरण का मुख्य कारण समाज में भौतिक संसाधनों का असमान वितरण है । जिसके कारण कोई बहुत संमृद्ध तो कोई बहुत गरीब है। पौराणिक शिक्षा और आधुनिक शिक्षा में मुख्य अन्तर नैतिकता का है। प्रसिद्ध

लेखक शिव खेड़ा आधुनिक शिक्षा व्यवस्था को समझाते हुये कहतें हैं कि, श्री राम और रावण दोनों अतिविद्वान एवं अतिबलशाली थे । परन्तु दोनों के शिक्षा में मात्र नैतिकता का अन्तर था। अतः अगर आज की शिक्षा प्रणाली की बात करें तो हम कह सकतें हैं, कि आज की शिक्षा प्रणाली में नैतिकता का लोप हो गया है । अतः आज की शिक्षा व्यवस्था केवल रावण उत्पन्न कर रही है। नैतिकताविहिन ज्ञान अधर्म के पथ पर ले जाती है।

रामराज्य की परिकल्पना में नैतिकता पर सबसे ज्यादा बल दिया गया है। और नैतिकता के लिये आवश्यक है के लोगों को भोजन , सुरक्षा और परिवार के पालन हेतु अनिश्चितता न हो । अन्यथा लोग अनैतिक रहेंगें हीं तथा रामराज्य कोरी कल्पना रह जायेगी ।

उपसंहार :

इस अध्याय में हम सनातन धर्म के बारे में कुछ मौलिक तत्वों को जान पायें हैं। सनातन धर्म के सारे सिद्धान्त का आधार वैदिक ग्रन्थ हीं है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि सनातन धर्म का एक हीं मौलिक सिद्धान्त है कि ***नश्वर के प्रति आसक्ति होती है जिसके कारण संसार दूःखमय प्रतीत होती है, तथा ईश्वर के प्रति प्रेम होता है जिसके कारण ईश्वर को प्रेममय माना जाता है।***

सनातन धर्मानुशासन के अनुसार सबसे पहले सबको ***स्वयं से प्रेम करना चाहिए****। इसके लिए अपनी स्वास्थ्य और अस्तित्व की रक्षा को ध्यान में रखकर कर्म करना परमधर्म है । साथ हीं साथ संसार में रहकर संसार से प्रेम करना आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक कर्म* ***बसुधैव कुटूम्बकम्*** *अर्थात् अहिंसा से प्रेरित हो। इस सिद्धान्त के पालन करने से जीवन में उत्साह बना रहता है। सनातन धर्म के सभी नियमों (संध्यापूजन, व्रत–उपवास ,यज्ञ–तप–दान इत्यादि) का पालन स्वतः होने लगता है । इसलिए विद्वान कहतें हैं कि सनातन धर्म के सिद्धान्त (सबसे प्रेम करना)को पालन करने पर सनातन धर्म का पालन स्वतःस्फूर्त होने लगता है। इसके लिए अलग से कोई कर्मकाण्ड़ करने की आवश्यकता नहीं होती है। वल्कि सारे कर्मकाण्डों के प्रति रुचि स्वतः जागने लगती है। सनातन धर्म के सिद्धान्त के आचरण के बिना इसके लाभ का अनुभव नहीं हो सकता । आगे के अध्याय मे सनातन धर्माचरण पर विवेचना प्रस्तुत की गई है।*

इति शुभम्

आचरण खण्ड

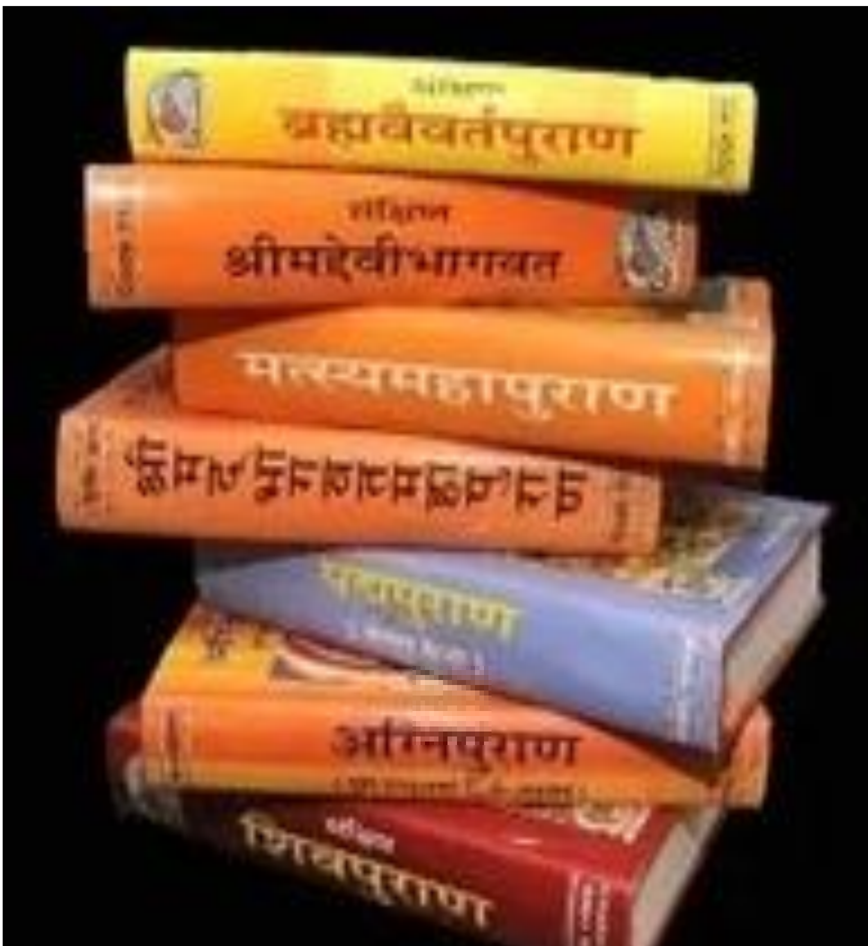

सनातन धर्म में सारे पुराण , रामायण, महाभारत आदि व्यवहारिक वेद के द्योतक हैं । पुराणों को पंचम वेद भी कहतें हैं ।

—:o7:—

पुरुषार्थ और आश्रम

7.1. पुरुषार्थ क्या है?

एक भ्रम हमारे समाज में है कि पुरुषार्थ सिर्फ पुरुषों का कर्म है। नारी पुरुषार्थ नहीं कर सकती जैसा की पुरूषार्थ शब्द के साधरण शब्दार्थ से प्रतीत होता है। कुछ लोग पुरुषार्थ का अर्थ हिम्मत भी कहते हैं । मानव जीवन संघर्षों से भरा पड़ा है । तथा सारे संघर्ष का उद्देश्य धर्म अर्थ तथा काम की पूर्ति हीं है । मानव जीवन संघर्षमुक्त हो हीं नहीं सकता है । मध्य प्रदेश के एक कवि अर्जुन सिसोदिया ने इसे व्यक्त करते हुये कहा है :

संघर्ष नहीजिसके जीवन में , वह तो बड़ा अभागा होगा ।
या उसने निज प्रण तोड़ी होगी या फिर रण से भागा होगा ।।

*शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ की परिभाषा है :–**पुरुषैर्ध्यते इति पुरुषार्थ** पुरुष अथवा आत्मा के जन्म के अर्थ/उद्देश्य की प्राप्ति हीं पुरुषार्थ है।*

आध्यात्मिक शब्द पुरूष का अर्थ आत्मा है। साथ हीं साथ आत्मा किसी विशेष प्रयोजन अथवा लक्ष्य/उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हीं शरीर अथवा योनि धारण करती है ,यह शरीर नर का या नारी कुछ भी हो सकता है। अतः पुरुषार्थ का अर्थ है – आत्मा का शरीर धारण करने का प्रयोजन की प्राप्ति हेतु किया जानेवाला उपक्रम। संसार में जितने भी जीव/योनि हैं उन्हे दो वर्गोमें बाँटा गया है।

1. भोग योनि ,   2. मुक्तियोनि ।

मनुष्य को छोड़कर संसार में जितने भी योनि हैं , वे भोग योनि के माने जातें है। मनुष्य की योनि अति उत्तम मानी जाती है, क्योंकि मनुष्य योनि की प्राप्ती मुक्ति अथवा मोक्ष की प्राप्ति के लिए होती है । अतः संसार में जितने भी मनुष्य हैं , वे पुरुषार्थ के लिये हीं शरीर धारण किये हैं , चाहे वे नर हों अथवा नारी ।

सनातन धर्म में ज्यादातर ऋषियों ने चार पुरुषार्थ की बात की है। जबकि चार्वाक दो हीं पुरुषार्थ –अर्थ और काम को मान्यता देते हैं। भारतीय धर्मग्रन्थों की विवेचना में चार पुरुषार्थ हीं मान्य है।

1. धर्म , 2.अर्थ, 3. काम , 4. मोक्ष

धर्म, अर्थ और काम को अलग –अलग समझना मानव बुद्धि की परिधि के बाहर है। इसलिए ऋषियों ने कहा है कि:–

विद्या ददाति विनयम् , विनयाद् यादि पात्रताम् ।
पात्रत्वा धनम् आप्नोति धनाद् धर्मं ततः सुखम्।।

अर्थात भौतिक सुख के लिये धर्म की जरुरत होती है। धर्म के लिये धन की आवश्यकता है। धनार्जन के लिये योग्यता की आवश्यकता है । तथा योग्यता विनयशील होने से हीं प्राप्त होती है , जिसके लिये विद्या का होना अत्यावश्यक है। अतः विद्या के बिना पुरुषार्थ संभव नहीं है ।

7.2 पुरुषार्थ के लिये विद्या क्या है ?

सनातन मान्यता के अनुसार विद्या को समझने के लिये हमें विष्णुपुराण के एक श्लोक पर ध्यान देना चाहिये :

तत्कर्म येन्न बंधाय ,सा विद्या या विमुक्तये ।
आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ।।

अर्थात कर्म वह है जो बन्धन का कारण नहीं बनता , विद्या वह है जो मुक्ति प्रदान करती है । अन्य सभी कर्म केवल परिश्रम है तथा अन्य सभी विद्या केवल कौशल है । श्रीमद् भगवद्गीता के अनुसार सत्य के स्वरुप के प्रति अज्ञान को अविद्या कहते हैं।

7.3. चार पुरुषार्थ :

साधारण मनुष्य की प्रवृति होती है , कि वह जीवन में आनन्द हीं आनन्द प्राप्त करे , और उसके लिये प्रयासरत भी रहता है। परन्तु सुख अथवा कामना पूर्ति हेतु आवश्यक है , कि वह अपने योग्यतानुसार नैतिक मूल्यों के साथ धन उपार्जन करे। सनातन पुरुषार्थ को समझने के लिये हमें चारो पुरुषार्थो को अलग – अलग समझना आवश्यक है।

1. ***धर्मः—*** *भौतिक संसार में व्यक्तियों में व्याप्त सुख–दुःख, दरिद्रता–धनाढ्यता ,रुग्णता–अरुग्णता, बुद्धिमता–शठता इत्यादि विचित्रताओं की व्याख्या केवल दृष्ट कारणों से नहीं हो सकती , उदाहरण के लिए युग्म बालकों में माता–पिता के द्वारा अपने युग्म बच्चों का लालन–पालन एक तरह से करने के बावजुद कालान्तर में उनकें आचरण में अनेक प्रकार का अन्तर दृष्टिगोचर होतें हैं। अतः बाध्य होकर इन विचित्रता के कारणरुप में जन्मान्तरीय धर्माधर्म रुपी अदृष्ट कारण को मानना हीं पड़ता है। वास्तव में धर्माधर्म मानव की बुद्धि की परिधि के बाहर का विषय है। फिर भी हमारे ऋषियों ने धर्म को परिभाषित करते हुए यह बताया है कि* ***निच्छल मन (बिना किसी दबाव के) जिस कर्म के लिये प्रेरित करता है वही धर्म हैं । यह किसी पुस्तक में संकलित नहीं किया जा सकता है ।***
2. ***अर्थ :—*** *अर्थ को साधारण भाषा में संसाधन अथवा धन भी कहते हैं। अपनी कामना अथवा लक्ष्य को पूरा करने के लिये जरुरत के अनुसार साधन जुटाने के उपक्रम को आर्थिक क्रिया कहा जाता है। आर्थिक क्रिया से हीं अर्थ की प्राप्ति होती है। सनातन धर्म के अनुसार मुद्रा धन की श्रेणी में नहीं रखा जाता है ।* ***सनातन धन अथवा अर्थ वह है जिसमें उत्पादन करने की स्वयं की क्षमता हो, जैसे धेनु , भूमि , विद्या , संतति , इत्यादि।***
3. ***काम :—*** *साधारणतः लोग काम का अर्थ वासना से जोड़ देते हैं। परन्तु वास्तव में काम का अर्थ है कामना । प्रत्येक मनुष्य के जीवन में तीन प्रकार की कामनायें होती हैं :1. ज्ञानवृद्धि , 2. धनवृद्धि तथा 3. वंशवृद्धि। ज्ञानवृद्धि को लोग धर्म के वर्ग में, धनवृद्धि को अर्थ के वर्ग में तथा वंशवृद्धि को काम के वर्ग में रखा जाता है। इसलिये साधारणतः काम को वासना से जोड़कर देखा जाता है। इसलिए काम का मुख्य उद्देश्य वंशवृद्धि को माना जाता है। यह सर्वविदित है कि सृष्टी रचना के लिये प्रकृति–पुरुषका संयोग आवश्यक होता है।* ***काम किसी व्यक्ति के अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा अपने क्षमता को व्यक्त करने का प्रयास है ।***
4. ***मोक्ष :—*** *यह एक जटिल विषय है। साधारण लोगों में यह धारणा है कि धर्म के अनुसरण करने वालों को जीवनोपरांत मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार मोक्ष जीवन का विषय हीं नहीं है। जब यह जीवन का विषय*

*हीं नहीं है तो इसके अस्तित्व को कैसे समझा जा सकता है। जबकि मोक्ष का साधारण अर्थ है –**मो**ह का **क्ष**य ।*

*मोह के क्षय होने से जीवन का द्वन्द समाप्त हो जाता है। जिससे जीवन के प्रयोजन का मार्ग स्पष्ट दिखाई देने लगता है। इसलिए धर्मपथ पर चलने वालों के लिए जीवन आनन्दमय हो जाता है।**मोक्ष का लक्ष्य जीवन में हीं परमानन्द को प्राप्त करना है।***

7.4. चार आश्रम :

सनातन धर्म में जीवन के पुरुषार्थ हेतु चार आश्रमों की व्यवस्था बताई गई है। जिसमें आश्रमों के कालखण्ड़ सांकेतिक हैं । इसमें मनुष्य को शतायु माना गया है ।

*1. **ब्रह्मचर्य आश्रम :–***

मनुष्य के जीवन की प्रथम 25 वर्ष के कालखण्ड को ब्रह्मचर्य आश्रम माना जाता है । यह 25 वर्ष सांकेतिक समय है । वास्तव में जीवन के प्रथम अवस्था में मनुष्य के अन्दर उसके जीवन–यापन के लिये कौशल का विकास होता है । इस आयुखण्ड़ में ब्रह्मचर्य धर्म पालन करने की सलाह दी जाती है। इससे अपने लक्ष्य के प्रति एकाग्रता बनी रहती है , जिससे लक्ष्य प्राप्त करना आसान हो जाता है। मनुष्य जीवन का प्रथम 25 वर्ष उसके जीवन की रुपरेखा तैयार कर देता है ।

2. गृहस्थ आश्रम :–

*मनुष्य के जीवन की द्वितीय कालखण्ड़ (25 वर्ष – 50 वर्ष) जो विवाह संस्कार के बाद आरंभ होता है, गृहस्थ आश्रम कहलाता है । कालखण्ड़ का वर्ष सांकेतिक हैं , इसी आधार पर कई पुस्तकों में कन्या की विवाह आयु 12 बर्ष के बाद और पुरुष की विवाह आयु 25 वर्ष के बाद बताया गया है । व्यवहारिक रुप से पुराने व्यवस्था के अनुसार कन्या की विवाह आयु गृह कार्य में रुचि उत्पन्न होने एवं हॉरमोनल परिवर्तन आरंम्भ होने उपरांत तथा द्विरागमन गृह कार्य में दक्ष होने तथा शारीरिक रुप से संतानोत्पत्ति के लिए सक्षम होने के उपरांत होता था। तथा पुरुष की विवाह आयु अर्थोपार्जन हेतु सक्षमता प्राप्त करने के उपरांत करने की बात की गई है। परन्तु मनुस्मृति (9.94) के अनुसार " **पुंसा यावदायुः स्त्रीणां तावद्वर्षसमं स्मृतम्**" पुरुष और*

स्त्री की विवाह आयु सदृश्य होनी चाहिए। वर–कन्या के विवाह आयु में अधिक अन्तर होना सनातन धर्म में उचित नहीं माना गया है। आजकल पुरुष एवं कन्या दोनों अर्थकरी विद्या समान रुप से प्राप्त कर रहें हैं। अतः व्यवहारिक रुप से विवाह दोनों की अर्थोपार्जन सक्षमता प्राप्त करने के उपरांत हीं हो रही है।

कतिपय कारणों से कई युवा अपनी आवश्यकता के अनुरुप अर्थोपार्जन नहीं कर पाते। धार्मिक दृष्टिकोण से गृहस्थ आश्रम का पुरुषार्थ (धर्म –अर्थ–काम) प्राप्त करने में सक्षमता प्राप्त होने के उपरांत हीं विवाह निर्णय उचित है । अन्यथा जीवन व्यर्थ हो जाता है । सफलता का मूल मंत्र है अपने–आप को जानना । सफलता किस्मत से ज्यादा मानसिकता पर निर्भर करती है । मानसिकता दो प्रकार की होती है।

संकुचित मानसिकता* (Fixed Mindset) *:–इस मानसिकता वाले लोग अपनी क्षमता को सीमित मानकर यह धारणा बना लेते हैं कि , वे किसी विशेष काम को हीं कर सकते हैं । परन्तु परिस्थितिवस अगर उन्हे उनके धारणा के अनुरुप काम का अवसर प्राप्त नहीं हुआ , तो वे अपने–आप को असहाय मानकर , अपनी किस्मत को दोषी ठहराकर , आगे कोई कोशिश हीं नहीं करते ।*

विकासशील मानसिकता* (Growth Mindset)*:– इस मानसिकता के लोग अपनी क्षमता को सीमित नहीं मानतें है । वे अपने लक्ष्य को स्पष्ट रखकर तब तक संघर्ष करतें हैं , जबतक की उन्हे सफलता प्राप्त न हो जाये। ऐसे लोग किसी से अपनी तुलना नही करतें । वे अपने बीते हुये कल से अपने आज की तुलना करतें हैं । वे लगातार अपने–आप में सुधार लाते हैं एवं अपने लक्ष्य से भटके बिना अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रति अपने प्रयास की निरंतरता बनाये रखते हैं । वे अपना छोटे–छोटे लक्ष्य निर्धारित करके उसे प्राप्त करतें हैं । अपने छोटे लक्ष्यों के पूरा होने के कारण उनका उत्साह बना रहता है और इस तरह वे अपने बड़े लक्ष्य को भी आसानी से प्राप्त कर लेते हैं। विकासशील मानसिकता वाले* **Slow and steady wins the race** *की कहावत को चरितार्थ करतें हैं ।*

व्यवहारिक रुप से दुनियाँ हर कदम पर हतोत्साहित करती है । सफलता के लिए हमारा आत्मविश्वास ही हमारा सहायक होता है। गृहस्थ आश्रम जिम्मेवारियों से भरा पड़ा है । इसी आश्रम में हमें धर्म–अर्थ–काम को प्राप्त करना होता है ।

"सफल गृहस्थ जीवन के लिये सबसे ज्यादा आवश्यकता है आत्मविश्वास की तथा आत्मविश्वास कोई नैसर्गिक उपहार नहीं है, यह तो एक कौशल है जो अपने–आप से बात करने से प्राप्त होता है ।"

3. वानप्रस्थ आश्रमः– *मनुष्य के जीवन की तृतीय कालखण्ड़ (50वर्ष –75वर्ष) जो गृहस्थआश्रम की उतरदायित्व निर्वहन के उपरांत आरंभ होता है, वानप्रस्थ आश्रम कहलाता है। वानप्रस्थ आश्रम का साधारण अर्थ वन प्रस्थान से है। ऐसा माना जाता है कि गृहस्थ आश्रम में लोगों का कर्तव्य कर्म जीवन के पुरुषार्थ धर्म–अर्थ–काम पर केन्द्रित होता है। परन्तु जीव के जन्म का मुख्य उद्देश्य तो मोक्ष प्राप्त करना है। अतः गृहस्थ आश्रम की उतरदायित्व निर्वहन के उपरांत लोग मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होते हैं । मोक्ष की ओर अग्रसर होने का अभिप्राय है अपने जीवन की आवश्यकताओं को कम करने की ओर कदम बढ़ना। आवश्यकता कम होने पर इच्छा न्यूनतम होगी तथा इच्छा जब शुन्यप्राय हो जाये तब हीं मुक्ति अथवा परमानन्द प्राप्त होता है। क्योंकि सनातन शास्त्रों के अनुसार पुर्नजन्म का कारण हीं पूर्वजन्म की शेष इच्छा होती है। जब लोग इस आयुखण्ड़ में होतें हैं तो उनका शरीर दुर्बलता की ओर अग्रसर होता है । उनके संतान अपने गृहस्थ जीवन में संघर्ष कर रहे होते हैं , जिससे अकेलापन भी सताने लगता है । अतः इस आयु में लोगों को दो स्वभाविक शत्रुओं से लड़ना पड़ता है :*

1. *शारीरिक दुर्बलता के कारण शरीर में होनेवाले व्याधि ।*
2. *अकेलापन के कारण मानसिक तनाव अथवा आधि।*

पौराणिक युग में प्रबुद्ध लोग भौतिक आड़ंबर से दूर रहने के लिए वन को प्रस्थान कर जाते थे , जहॉ ऋषि मुनियों के आश्रम , भोजन हेतु वन के फल , शुद्ध वायु , शुद्ध जल उपलब्ध होते थे । वे यहाँ ऋषि– मुनियों के द्वारा निर्देशित धर्मयुक्त आचरण करते थे जिससे वे नित्य सांसारिक आड़म्बर अथवा मोह से दूर रहकर अपने अकेलेपन को भक्ति मे बदल देते थे जिससे उनका जीवन आनन्दमय हो जाता था । वे अपनी व्याधियों को दूर करने के लिये वनौषधि का प्रयोग कर लेते थे ।

आज चिकित्सा के लिये आधुनिक उपकरणयुक्त बड़े –बड़े अस्पताल हैं। अकेलापन दूर करने के लिये भौतिक सुविधायुक्त वृद्धा–आश्रम उपलब्ध हैं।

परन्तु अस्पताल और वृद्धाआश्रम वानप्रस्थ आश्रम के मौलिक उद्देश्य को पुरा नहीं कर पा रहें हैं । क्योंकि वानप्रस्थ आश्रम के मौलिक उद्देश्य है मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होना । ***ऐसी परिस्थिति में घर में रहकर मोक्ष अथवा परम् आनन्द प्राप्त करने का बस एक ही शास्त्रोक्त तरीका है कि अपने ईच्छाओं एवं आवश्यकताओं को कम करके साक्षी भाव रखकर सबसे प्रेम करना ।*** *साक्षी भाव आने पर हम अपनी क्षमता के अनुसार आवश्यक कर्तव्य कर्म (यह आर्थिक भी हो सकता है) सांसारिक मोह माया से दूर रहकर करते रहते हैं । जिससे अकेलापन भी दूर रहता है एवं शरीर भी स्वस्थ रहता है।* ***यही मोक्ष प्राप्ति का सर्वाधिक प्रभावकारी युक्ति है । इस युक्ति से हमारा जीवन सदा आनन्दमय रहता है ।***

4. सन्यास आश्रमः– *मनुष्य के जीवन की अंतिम कालखण्ड़ (75वर्ष –100वर्ष) जो वानप्रस्थ आश्रम में साक्षी भाव प्राप्त करने के उपरांत आरंभ होता है। जब मनुष्य के अवचेतन मन में साक्षी भाव उत्पन्न हो जाता है तो मनुष्य अपने आप को जान लेता है । वह इसे अच्छी तरह समझ लेता है कि वह शरीर नहीं है। वह तो शरीर का संचालक है । इस प्रकार सन्यास आश्रम में उसका शरीर से मोहभंग हो जाता है । तथा वह अपना शरीर छोड़ने तक आनन्द से जीवन जीता है ।*

यह ध्यान रखना चाहिए कि त्याग और सन्यास में बहुत अन्तर हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में इसी विषय पर विमर्श किया गया है। ***कर्मका त्याग करना सन्यास नहीं है।सन्यास का अर्थ है –कर्तापन का त्याग करना ।***

7.8. असफल जीवन का कारण :

कई बार उच्च शिक्षा प्राप्त लोग भी सफल नही हो पाते । मनोवैज्ञानिक इसका कारण बताते हुए कहते हैं कि :

*असफलता का मुख्य कारण यह है कि, हम अपने–आप पर ध्यान न देकर दुसरों पर ध्यान देते हैं। हम अपना बहुत ज्यादा समय दुसरों की अच्छाईयों और बुराईयों को ढूढ़ने में बर्बाद कर देतें हैं। इससे हम अपने–आप को दुसरे से अच्छाईयों एवं बुराईयों से तुलना करने लगतें हैं। इस तुलना के उपरांत अपने मस्तिष्क के बने सुदृढ़ न्युरॉल विन्यास (*Neural Circuit*) के अनुरुप कभी हम सफल लोगों से प्रेरित होतें हैं, तो कभी इर्ष्या करने लगते हैं।*

किसी दूसरे के सफलता से प्रेरित होकर हम अपने–आप को जाने बिना उनकी नकल करने लगते हैं जिसका परिणाम है असफलता।

"तुलना ज़हर के समान है, जो हमारे आत्मविश्वास को घटाकर हमारी अपनी पहचान को हीं समाप्त कर देती है । "

तुलना के कारण कई बार हम अपने लक्ष्य से भी भटक जाते हैं , तथा दुसरों की राय में बहने लगतें हैं, इससे छोटा–छोटा काम भी बड़ा प्रतीत होने लगता है , तथा असफलता के लिए हम अपने–आप को दोषी मानकर अवसाद की ओर बढ़ने लगते हैं ।

7.9. भगवान की भक्ति का प्रभावः

सनातन धर्म की धारणाओं का एक प्रमुख है कि नश्वर संसार दुःखमय है केवल ईश्वर हीं परमानन्द प्रदान करने वाला है। इसे हम एक प्रसिद्ध उदाहरण से समझ सकतें हैं ।

ऐसा कहा जाता है कि रामकृष्ण परमहंस का माँ काली से सीधा संवाद होता था । अंतिम समय में जब रामकृष्ण परमहंस बीमार थे । तो उनके शिष्यों ने उनसे कहा कि माँ काली से आप अपने स्वास्थ्य को ठीक करने के लिए क्यों नहीकहते। इसपर परमपूज्य रामकृष्ण परमहंस ने कहा कि मैं माँ के शरण में हूँ और मुझे उन्हे कुछ बताने की आवश्यकता नहीं होती है। मैं तो इस रोगी शरीर में भी वैसा हीं आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ जैसा एक बच्चा माँ के गोद में अनुभव करता है ।

वास्तव में भक्ति का अर्थ केवल पूजा–पाठ करना हीं नहीं है। वल्कि भक्ति का अर्थ है पूर्ण समर्पण अथवा अपने सफलता –असफलता से प्रभावित हुए बिना निरंतर कर्मयोग(आसक्ति–विहीन कर्म) करना ।

उपसंहार :

*पुरुषार्थ प्राप्त करने के लिए भी कौशल की आवश्यकता होती है इसके लिए योजनाबद्ध उपकर्म का नित्य अभ्यास करना पड़ता है। इस अभ्यास से हमारे मस्तिष्क का न्युरॉल विन्यास (*Neural Circuit*) सकारात्मक ढंग से व्यवस्थित हो जाता है। जिससे हमें अपने कर्म में आनन्द प्राप्त होने लगता है।*

*सनातन धर्म मानने वाले जीवन में संस्कार को बहुत महत्व देतें हैं । उनका मानना है कि जीवन संस्कार मानव मस्तिष्क का न्युरॉल विन्यास (*Neural Circuit*) सकारात्मक ढंग से व्यवस्थित करने में बहुत मदद करती है। आगे के अध्याय में इसी व्यवहारिक जीवन संस्कार का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है ।*

इति शुभम्

गुरुब्रह्मा गुरुबिष्णु गुरु देवः महेश्वरः ।

गुरु साक्षात् परंब्रह्मा तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

—:08 :—

सनातन संस्कार

8.1. गुणवत्तापूर्ण जीवन हेतु संस्कार :

सनातन ग्रन्थ गौतम स्मृति में 40 संस्कारों का उल्लेख है । तो महर्षि अंगिरा ने 25 संस्कारों की बात की है । जबकि महर्षि व्यास ने मात्र 16 संस्कारों को प्रमुख माना है । आजकल 16 संस्कारों को हीं प्रमुख माना जाता है । इनमें जीवनकाल के संस्कार मात्र 15 हैं । इन संस्कारों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जाता है । ***1. गर्भसंस्कार , 2. गुणाधान संस्कार***

8.2.गर्भ–संस्कार :

गर्भाधान से विद्यारंभ तक के संस्कारों को गर्भ संस्कार कहते हैं। इन्हे दो भागों में विभाजित किया जाता है । 1. अन्तर्गर्भ संस्कार 2. बहिर्गर्भ संस्कार

8.2.1अन्तर्गर्भ संस्कार

1. **गर्भाधान संस्कार :**

   इसका उद्देश्य उत्तम संतति को प्राप्त करने की इच्छा है । गृहस्थ जीवन में प्रवेश के उपरांत प्रथम कर्तव्य के रुप में इस संस्कार को मान्यता दी गई है। उत्तम संतति की इच्छा रखने वाले माता पिता स्वस्थ तन–एवं प्रफुल्लित–मन से इस अतिमहत्वपूर्ण संस्कार को करते हैं ।

2. **पुंसवन संस्कार :**

   इसका उद्देश्य गर्भवती स्त्री को स्वस्थकारक सात्विक भोजन को अपनाने के लिए प्रेरित करना है । ऐसा माना जाता है कि गर्भ के तीसरे माह से गर्भस्थ शिशु के मानसिक विकास का आरम्भ हो जाता है। इसलिए गर्भधारण के तीसरे माह में उचित मुहूर्त में इस संस्कार को किया जाता है। इस संस्कार में माता को औषधि के रुप में कुछ ग्रहण कराया जाता है जिससे गर्भस्थ शिशु का समुचित विकास हो। भ्रमवश कुछ लोग इस संस्कार को गर्भस्थ शिशु के लिंगनिर्णय से जोड़कर देखतें हैं ।

3. *सीमन्तोन्नयन संस्कार :*

गर्भ के छठे माह के उतम मुहूर्त में इस संस्कार का अभिप्राय है, गर्भस्थ शिशु एवं उसकी माता की रक्षा करने के साथ–साथ माता को किसी भी प्रकार के तनाव से दूर रखकर प्रसन्न रखना। ऐसा माना जाता है कि माता के तनाव में रहने से गर्भस्थ शिशु पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। आज के वैज्ञानिक युग में भी इस संस्कार को बहुत महत्व दिया जाता है।

8.2.2. बहिर्गर्भ संस्कार

1. जातकर्म संस्कार :

नवजात शिशु जब संसार के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आता है तो नवजात के मेधा, बल एवं दीर्घायु के लिये इस संस्कार को किया जाता है । इसमें विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है। इस संस्कार के बाद माता बालक को स्तनपान कराती है । कई जगह नवजात को मधु , घी इत्यादि मंत्रोचारण के साथ बच्चे को दुग्धपान के पूर्व चटाने की परंम्परा है । परन्तु आज के समय में डॉक्टर के सलाह के बिना मधु ,घी इत्यादि का सेवन कराना उचित नहीं है ।

2. नामकरण संस्कार :

जन्म के ग्यारहवें दिन यह संस्कार होता है। हमारे धर्माचार्यो ने जन्म के दस दिन तक अशौच (सूतक) माना है। इसलिये यह संस्कार ग्यारहवें दिन करने का विधान है। महर्षि याज्ञवल्क्य का भी यही मत है, लेकिन अनेक कर्मकाण्डी विद्वान इस संस्कार को शुभ नक्षत्र अथवा शुभ दिन में करना उचित मानते हैं। ऐसा माना जाता है कि मनुष्य के व्यक्तित्व पर भी नाम का प्रभाव पड़ता है । अतः नवजात शिशु को धर्मानुसार अर्थपुर्ण नाम देने का काम इस संस्कार में किया जाता है ।

3. निष्क्रमण संस्कार :

इस संस्कार मे शिशु को शुभ मुहुर्त में शिशु को घर से बाहर निकालकर भगवान भास्कर के तेज तथा चन्द्रमा की शीतलता से परिचित कराया जाता है । इसके पीछे की परिकल्पना यह है कि शिशु आगे चलकर तेजस्वी और विनम्र हो। इस संस्कार को चौथे माह में कराने का विधान

है। ऐसा माना जाता है कि तीन माह तक शिशु का शरीर बाहरी वातावरण यथा तेज धूप, तेज हवा आदि के अनुकूल नहीं होता है । इस संस्कार के उपरांत हीं शिशु को घर से बाहर के वातावरण में लाया जाता है ।

4. अन्नप्राशन संस्कार :

इस संस्कार का उद्देश्य शिशु के शारीरिक व मानसिक विकास पर ध्यान केन्द्रित करना है। अन्नप्राशन का स्पष्ट अर्थ है कि शिशु जो अब तक पेय पदार्थो विशेषकर दूध पर पालित था अब अन्न ग्रहण कर शारीरिक व मानसिक रूप से अपने को बलवान व प्रबुद्ध बनाए। हमारे धर्माचार्यो ने अन्नप्राशन के लिये जन्म से छठे महीने को उपयुक्त माना है। छठे मास में शुभ नक्षत्र एवं शुभ दिन देखकर यह संस्कार किया जाता है ।

5. चूड़ाकर्म संस्कार :

चूड़ाकर्म को मुंडन संस्कार भी कहा जाता है। हमारे आचार्यो ने बालक के पहले, तीसरे या पांचवें वर्ष में शुभ मुहूर्त में इस संस्कार को करने का विधान बताया है। इस संस्कार के पीछे शुचिता और बौद्धिक विकास की परिकल्पना की गई है ।

6. विद्यारंभ संस्कार :

विद्यारम्भ का अभिप्राय बालक को शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर से परिचित कराना है। जब बालक बोलना तथा समझना प्रारंम्भ कर देता है तो माँ–बाप तथा गुरुजन उसे मौखिक रूप से कुछ–कुछ सीखना प्रारंभ कर देतें हैं। इसका आरंम्भ शुभ मुहुर्त में वैदिक श्लोकों के उच्चारण से होता है।

8.2.3. गुणाधान संस्कार :

1. कर्णवेध संस्कार :–

भारतीय मनीषियों का मानना है कि कर्णवेध संस्कार के उपरांत एकाग्रता बढ़ती है। इसलिए जब शिशु पाँच वर्ष का हो जाता है तो शुभ मुहुर्त में कर्णवेध संस्कार किया जाता है। तथा इसके उपरांत बच्चे को लेखन के अभ्यास का आरंम्भ कराया जाता है। इस संस्कार के साथ ही बच्चों को

आभुषण से परिचित कराया जाता है। जिससे बच्चे को सौन्दर्याबोध भी हो जाता है। इस संस्कार के उपरांत बच्चे को परम्परागत ज्ञान के साथ–साथ लिखना , पढ़ना इत्यादि को सिखाना प्रारंम्भ किया जाता है ।

2. यज्ञोपवीत संस्कार :

जब बच्चे इतने सक्षम हो जाते हैं कि वे अपना ध्यान स्वयं रख सके तो बौद्धिक विकास एवं आध्यात्मिक उन्नति के उद्देश्य से उन्हे गुरुकुल भेजने की परम्परा है। गुरुकुल जाने के पूर्व यज्ञोपवीत संस्कार की परंम्परा है। इसे आठ–सोलह वर्ष के उम्र में करने की परम्परा है। इस संस्कार के उपरांत बालक यज्ञोपवीत धारण करता है। इस संस्कार का अभिप्राय बच्चे को संयमित जीवन जीने के लिए प्रोत्साहित करना है ।

3. वेदारंभ संस्कार :

यज्ञोपवीत के बाद बालकों को वेदों का अध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचित होने के लिये योग्य आचार्यो के पास गुरुकुलों में भेजा जाता है। वेदारम्भ से पहले आचार्य अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा कराते हैं ,तथा उसकी परीक्षा लेने के बाद ही वेदाध्ययन कराते हैं। असंयमित जीवन जीने वाले वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं माने जाते हैं।

4. केशांत संस्कार :–

गुरुकुल में वेदाध्ययन पूर्ण कर लेने पर आचार्य के समक्ष यह संस्कार सम्पन्न किया जाता है। वस्तुतः यह संस्कार गुरुकुल से विदाई लेने का उपक्रम है। वेद–पुराणों एवं विभिन्न विषयों में पारंगत होने के बाद ब्रह्मचारी के समावर्तन संस्कार के पूर्व बालों की सफाई की जाती है, तथा उसे स्नान केशान्त संस्कार शुभ मुहूर्त में किया जाता है।

5. समावर्तन संस्कार :–

गुरुकुल से विदाई लेने से पूर्व शिष्य का समावर्तन संस्कार होता है। इसके बाद ब्रह्मचारी मेखला व दण्ड को छोड़ देता है। जिसे यज्ञोपवीत के समय धारण कराया जाता है। इस संस्कार के बाद उसे विद्या स्नातक की उपाधि आचार्य देते हैं। इस उपाधि से वह सगर्व गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने

का अधिकारी समझा जाता है। यह संस्कार बच्चे से परिपक्वता की पहचान मानी जाती है। इस समय वालक की उम्र 23–24 वर्ष के लगभग होती है।

6. विवाह संस्कार :–

गुरुकूल में कर्म कुशलता प्राप्त करने के उपरांतविवाह संस्कार के द्वारा मनुष्य गृहस्थ धर्म में प्रवेश करता है। इस संस्कार के उपरांत गृहस्थ को अपना कर्तव्य कर्म करना पड़ता है। जिससे वह अपने गृहस्थ जीवन में तीनो पुरुषार्थ (धर्म–अर्थ–काम) को प्राप्त कर सके ।

उपसंहारः

गृहस्थ जीवन में अपने पुरुषार्थ के लिये नित्य अभ्यास करना पड़ता है जिसे दिनचर्या एवं जीवनचर्या कहतें हैं । अगले अध्याय में सनातन दिनचर्या एवं सनातन जीवनचर्या पर विमर्श किया गया है ।

इति शुभम्

—:०9 :—

सनातन गृहस्थ दिनचर्याएवं जीवनचर्या

सनातन धर्म के तीन नीति निर्धारक तत्व है।

1. स्वास्थ्य रक्षा 2. आत्मरक्षा 3. अहिंसा

सनातन गृहस्थ दिनचर्या एवं जीवनचर्या का निर्धारण इन्हीं तीन नीति–निर्धारक तत्वों के आधार पर निश्चित किया गया है।

9.1. स्वास्थ्य रक्षा :–

स्वास्थ्य रक्षा के लिए ऋग्वेद् के उपवेद् आयुर्वेद के निर्देशों का पालन को प्रमुखता दी जाती है। असके रचयिता भगवान् धनवन्तरी को माना जाता है। आयुर्वेद को सुलभ बनाने के लिए चरक, सुश्रुत आदि महर्षियों ने संहिताओं की रचना की। महर्षि चरक के महान शिष्य महर्षि वाण्भट्ट ने आयुर्वेद में अनेक परीक्षण के उपरांत महान ग्रन्थ अष्टॉगहृदय की रचना की जिसमें स्वस्थ जीवन जीने के लिये एवं रुग्णता–निवारण के लिये आयुर्वेदिक सूत्रों का संकलन है। इनकी चिकित्सा प्रणाली पूर्णतः प्राकृतिक है। **आयुर्वेद के अनुसार संसार में कोई रोग नहीं है परन्तु लोग रुग्ण होते हैं।** रुग्नता दो प्रकार की होती है:

1. अनुवांशिक रुग्णता 2. व्यवहारिक रुग्णता

मनुष्य के अनुवाशिक रुग्णता का उपचार कठिन है । परन्तु व्यहारिक रुग्णता का कारण मनुष्य का आचार –विचार , रहन–सहन एवं खान–पान होता है। मनुष्य की व्यवहारीक रुग्णतायें तीन प्रकार की होती है:

1. आधिः(मानसिक रोग) 2. व्याधिः(शारीरिक रोग)

3.त्वरिताः (आपात रोग)

9.1.1. आधि : मानसिक रुग्णता को आयुर्वेद में आधिः के नाम से जाना जाता है। इसका मुख्य कारण मानसिक तनाव को माना जाता है। मानसिक तनाव

*का मुख्य कारण अनुचित **आचार(आचरण) – विचार(चिन्तन)** है। जिसके लिए मानवीय दोष अहंकार ,लोभ और मोह इत्यादि का प्रमुख माना जाता है। ये दोष क्रमशः क्रोध, इर्ष्या तथा चिन्ता अथवा अवसाद आदि के रुप में प्रगट होता है।*

*आयुर्वेद में मानसिक तनाव के नियंत्रण के लिए **प्राणायाम तथा सक्रिय ध्यान** के अभ्यास को कारगर बताया गया है।*

नित्य सन्ध्या–पूजन भी सक्रिय ध्यान का ही उपक्रम है। संध्या–सामान्य पूजन में पंचोपचार पूजन अथवा षोड़षोपचार पूजन सक्रिय ध्यान का हीं उपक्रम है। ऐसा माना जाता है कि इसे आचरण में लाने से मनुष्य का ज्ञानेन्द्रियका परिस्कार उनके संवेदनाओं के माध्यम से हो जाता है। जो इस प्रकार है।

1. *घ्राणः (गंध) – हवन में धूप–गन्ध–औषधि का उपयोग।*
2. *श्रुति (ध्वनी) – मंत्रोचारण,शंखादि वाद्ययंत्र का उपयोग।*
3. *रसना (रस) – पंचामृत–नैवेद्य आदि का उपयोग।*
4. *चक्षु (रुप) – दीपक , पुष्पमाला , पुष्पआदि का प्रयोग ।*
5. *त्वचा (स्पर्श) – श्रद्धा से वस्त्राभूषणादि को ईश्वर को अर्पण।*

उपर्युक्त संध्या पूजन में किया जानेवाला सक्रिय ध्यान मानसिक तनाव पर नियंत्रण पाने का सर्वोतम साधन है। साथ हीं साथ मानसिक तंतुयों को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए वैद्यों के निर्देशानुसार प्राकृतिक रुप से ब्राह्मी, अश्वगंधा, शंखपुष्पी, जटामांसी इत्यादि का नित्य सेवन करने का प्रावधान आयुर्वेद में बताया गया है।

9.1.2. व्याधिः

*शारीरिक रुग्णता को आयुर्वेद में व्याधिः के नाम से जाना जाता है। इसका मुख्य कारण अनुचित **आहार (भोजन) –विहार (रहन–सहन)** को माना जाता है। **उचित भोजन का आयुर्वेदिक सूत्र है – हित्भुक् , मित्भुक् , ऋत्भुक्***

*जो भोजन शरीर के लिए हितकारी हो अथवा पौष्टिक (**षड़रस– मधुर, लवण, कटू ,तिक्त और कषाय स्वादों से युक्त भोजन संतुलित ,पौष्टिक और स्वादिष्ट होता है।)** तथा सुपाच्य हो उसे **हित्भुक्** कहतें है।*

*शरीरके आवश्यकता के अनुसार भोजन को **मित्भुक्** कहते हैं। एवं ऋतु के अनुकूल भोजन को **ऋतभुक्** कहते है।*

जो मनुष्य उचित भोजन के आयुर्वेदिक सुत्रों को अपनाता है , वह सदा स्वस्थ्य रहता है। इसके विपरीत आहार ग्रहण करनेवाले रुग्णता के शिकार होतें रहते हैं।

***उचित विहार हेतु आयुर्वेदिक अनुशासन :– नित्य व्यायाम तथा आसन ।** जो लोग विहार हेतु आयुर्वेदिक अनुशासन का प्रयोग नहीं करते उन्हे रुग्णता का सामना करना पड़ता है। विपरीत आहार–विहार के कारण होने वाले रोगों का निरीक्षण वैद्य नाड़ी के गति का निरीक्षण कर कफ–पीत–वायु दोष का पता लगातें है। एवं रोग के निदान लिए औषधि सेवन तथा आर्युवेद विशेषज्ञ के संरक्षण में प्राकृतिक रुप से पंच्कर्म (वमन–विरेचन–वस्ति–स्नेहन–स्वेदन) एवं उपवास करने की सलाह दी जाती है।*

9.1.3. त्वरिताः

आयुर्वेद में आकस्मिक रोग को त्वरिताः कहतें है। इसके अन्तर्गत मौसम में बदलाव के कारण होने वाली रुग्णतायें भी आती है। इस प्रकार के रोग का उपचार उपलब्ध औषधियों से वैद्य द्वारा आसानी से किया जाता है। परन्तु चोट के कारण हुये क्षति का उपचार आसानी से नहीं हो पाता।

आजकल विज्ञान अनेक खोज करते हुए नये–नये उपचार की पद्धति का उपयोग कर रहा है। आजकल रोग निवारण की प्रचलित पद्धति को एलोपैथ कहा जाता है। जिससे आकस्मिक रोगों का उपचार बहुत प्रभावी ढंग से संभव हो गया है।

आयुर्वेद पर परीक्षण बहुत कम होने के कारण लोगों का विश्वास आयुर्वेदिक औषधियों पर से कम हो रहा है। परन्तु यह सिद्ध है कि आयुर्वैदिक जीवन पद्धति लोगों को रुग्ण होने से बचाता है।

9.2.2. आत्मरक्षा

वैदिक नीति निर्देशक तत्वों में आत्मरक्षा का अर्थ है। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने आत्म–सम्मान की रक्षा । इसके लिए सबसे आवश्यक है सजग रहकर किसी भी प्रकार के आघात(भौतिक–बौद्धिक) के प्रतिकार के लिए

तैयार रहना । भौतिक आघात से सुरक्षा के लिए शस्त्र कुशलता की आवश्यकता होती है। एवं बौद्धिक आधात से सुरक्षा के लिए शास्त्र कुशलता की आवश्यकता होती है। पुरने राजतंत्र में राजा ब्राह्मण(शास्त्र–कुशल) और क्षत्रियों (शस्त्रकुशल) को ज्यादा महत्व देतें थे। क्योकि उनके अनुसार दोनो योद्धा हीं थे। ***ब्राह्मण वे योद्धा थे जो राज्य की रक्षा शास्त्रार्थ द्वारा बौद्धिक आधात से करते थे। तथा क्षत्रिये वे योद्धा थे जो राज्य की रक्षा भौतिक आधात से करते थे।*** *कोई भी मनुष्य अपने उपर होनेवाले भौतिक आघात अथवा बौद्धिक आधात पर तब ही ध्यान दे पाता है जब उसे भोजन–वस्त्र–आवास की चिन्ता न हो । इसके लिये आर्थिक उपार्जन आवश्यक है।*

9.2.3. अहिंसा (बसुधैव कुटूम्बकम्):

सनातन धर्म में नीति निर्देशक तत्वों में अहिंसा को प्रमुख स्थान प्राप्त है। अहिंसा का अर्थ है किसी भी प्राणि को मन–बचन–कर्म से आघात नहीं पहुँचाना। यह तब हीं संभव है जब हमारा नियंत्रण अपने मन–वाणि–कर्मेन्द्रिय पर हो। अतः अहिंसा तब हीं संभव है जब मनुष्य के पास आत्मसंयम हो। इसलिए कहा गया है कि ***अहिंसा परमो धर्मः*** *अतः अहिंसा अथवा आत्मसंयम से बड़ा कोई धर्म नही है। अहिंसा पालन हेतु आत्मरक्षा न करना सनातन धर्म नहीं है। क्योकि जब हमारा अस्तित्व है तब हीं हम भी हैं।* ***''अहिंसा परमो धर्मः'' का संदेश है आत्मसंयम के साथ आत्मरक्षा करना हीं सबसे बड़ा धर्म है।*** *सनातन गृहस्थ की दिनचर्या अथवा जीवनचर्या इन्ही तीन नीति–निर्धारक तत्वों पर आधारित होता है। वे जो भी कर्म करतें हैं उनमे उपर्युक्त नीतियो का समावेश आवश्य होता है।*

9.2.सनातन गृहस्थ दिनचर्या :

सनातन गृहस्थ दिनचर्या को आसानी से समझने के लिए परमेश्वर के तीनरुप ब्रह्मा–विष्णु–महेश एवं उनकी अर्धांगिनी आदिशक्ति के स्वरुप सरस्वती–लक्ष्मी–पार्वती की अवधारणा का उपयोग करना चाहिए। सनातन दिनचर्या मुहूर्त आधारित होती है। एक मुहूर्त 48 मिनट का होता है।

1. ***ब्रह्मा*** *, माता सरस्वती की सहायता से सृजन करतें हैं। अतः ब्रह्म मुहूर्त का समय का उपयोग अगर शुद्धचित् होकर दिनभर की योजना बनाने में किया जाये तो प्रकृति माता सरस्वती के रुप में सहयोग करती है। कई विद्वानों ने*

सूर्योदय से दो घंटा पहले से सूर्योदय के दो घंटा बाद तक के समय को शुद्धचित् होकर दिनभर की योजना बनाने के लिए उपयुक्त माना है।

2. **विष्णु**, माता लक्ष्मी की सहायता से पालन–पोषण करतें हैं। आर्थिक योजना के क्रियान्वन के लिये दिनभर का समय भगवान विष्णु से प्रभावित माना जाता है । इस समय आर्थिक योजना के ध्यानपूर्वक क्रियान्वन से माता लक्ष्मी का प्रसाद के रुप में समृद्धि प्राप्त होती है।

3. **महेश**, माता पार्वति के साथ मिलकर सवको न्यायोचित सुख–दूःख प्रदान करतें हैं। अगर दिनभर का कार्य संतोषप्रद होता है तो दिनभर के थकान को दूर करने के लिए माता पार्वती के प्रसादस्वरुप रात्रि में गहरी नींद आती है। अन्यथा मन में तनाव उत्पन्न होता है जिसके कारण रात्रि में नींद में माता पार्वती काली के रुप में बुरे सपने आते रहते हैं, जिससे नींद में बाधा उत्पन्न होती रहती है।

अतः सनातन दिनचर्या बनाने में प्राकृतिक सहयोग का लाभ लेते हुए बनाना चाहिए। इसमें प्रत्येक कर्म में सनातन नीति निर्देशक तत्वों का सदा स्मरण रखना चाहिए। आर्थिक कर्म जीवन के लिए आवश्यक है। सनातन दिनचर्या में इसको महत्वपूर्ण स्थान देना आवश्यक है।

9.3.सनातन गृहस्थ जीवनचर्या :

सनातन धर्म की मान्यता है कि जीव का मनुष्य जन्म किसी न किसी प्रयोजन से हुआ है। जब मनुष्य जीवन में जीव का जन्म लेने का प्रयोजन पूरा हो जाता है , तो जीव को मोक्ष की प्राप्ती हो जाती है।

मोक्ष का साधारण अर्थ है **मो**ह का **क्ष**य । जीवन के बाद का हाल कोई नहीं जानता है। मोक्ष को जीवन में हीं अपने सारे कर्मों को करते हुये प्राप्त किया जा सकता है। इसके प्राप्त होने पर जीवन आनन्द से भर जाता है। जब हमारी कोई साधारण इच्छा की पूर्ति होती है तो क्षणिक आनन्द की अनुभूति होती है। परन्तु मोह का क्षय होनेपर परम–आनन्द की अनुभूति होती है जिसका कभी क्षय नहीं होता तथा सारा संसार प्रेममय ईश्वर का स्वरुप प्रतीत होता है। परमानन्द प्राप्ति के लिए मुख्य रुप से पाँच प्रकार के योग बताये गयें है।

1. कर्मयोग – कर्मफल आसक्ति के अभाव के साथ कर्तव्यकर्म करना।

2. साख्ययोग – कर्तापन के अभाव के साथ कर्तव्यकर्म करना ।

3.क्रियायोग – आत्मनियंत्रण के साथ कर्तव्यकर्म करना ।

4. भक्तियोग – ईश्वर के प्रति पूर्णसमर्पण के साथ कर्तव्यकर्म करना ।

5. राजयोग –राजयोग श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित सर्वाधिक व्यवहारिक योग है। इस योग के अनुसार कर्तव्यकर्म करने के क्रम में कई बार मन मे सफलता–असफलता , पाप–पूण्य इत्यादि का भाव कर्तव्यकर्म के पथ में बाधा बनकर आ जाती है। इस बाधा से निकलने के लिए हमारे पास आत्मविश्वास को छोड़कर कोई उपाय नहीं होता है। परन्तु अगर आत्मविश्वास डगमगाने लगे तो हम अपने कर्तव्यकर्म को छोड़ने का निर्णय ले लेते हैं । उस स्थिति में ***ईश्वर को संरक्षक मानकर अपने कर्तव्यकर्म करने के पथ पर आगे बढ़ जाना राजयोग*** *है।*

कर्तव्यकर्म का अर्थ वैसा कर्म है जो सनातन नीति निर्धारक तत्वों के साथ सुसंगत हो। अन्यथा वह कर्म कर्तव्यकर्म नहीं है जो सनातन नीति निर्धारक तत्वों के साथ सुसंगत नहीं हो। कर्तव्यकर्म (पुण्यकर्म) और अकर्तव्यकर्म (पापकर्म) के बारे में साधारण सनातन सूत्र इस प्रकार है :

परोपकाराय पुण्याय , पापाय परपीड्नम्।।

9.4. त्याग और सन्यास :–

श्रीमद्भगवत् गीता के अनुसार अर्जुन भगवान के श्रीमुख से सनातन कर्तव्यकर्म के बारे में सबकुछ जानने के बाद एक अंतिम प्रश्न करतें हैं कि त्याग और सन्यास में क्या अन्तर है । क्योकि वे युद्ध को त्यागकर सन्यासी बनना उचित मान रहे थे। त्याग और सन्यास के बारे में यह भ्रम आज भी सामान्य लोगों में है। कई लोग अपनी कायरता को त्याग अथवा सन्यास के चादर से छुपाना चाहतें हैं । अतः त्याग और सन्यास के बारे में जाने बिना सनातन धर्मसिद्धान्तों का पालन हो हीं नहीं सकता है ।

सनातन सिद्धान्त के अनुसार कर्तव्यकर्म का त्याग करना त्याग नहीं है। अर्थात जीवन में आनेवाले कठिनाईयों का सामना करने के स्थान पर उनसे घबराकर भाग जाना त्याग नहीं है। त्याग का वास्तविक अर्थ होता है कर्मफल का त्याग अर्थात कर्तव्यकर्म हमें किसी भी स्थिति में करना हीं धर्म है।

कर्मफल पर आसक्तिरहित कर्तव्यकर्म करने वाले गृहस्थ कर्मयोगी अथवा योगी हीं होते हैं।

कोई भी मनुष्य कर्तव्यकर्म को त्यागकर सन्यासी नहीं बन सकता है। क्योकि ***सन्यासी तो वह है जिसमें कर्तापन का हीं अभाव हो*** *। अर्थात् कर्तव्यकर्म करनेवाला व्यक्ति हीं सन्यासी भी है। अतः वह गृहस्थ सन्यासी हीं है जो अपना कर्तव्यकर्म इस भाव के साथ करता है कि करने वाला कोई और है वह तो निमित मात्र है।*

गृहस्थ हीं सन्यासी भी है और कर्मयोगी अथवा योगी भी । अपने कर्तव्यकर्म को त्यागकर न तो कोई योगी बन सकता है और न हीसन्यासी ।

सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य, योगमस्ते समाश्रितः।

वहि कर्मफल त्यागी, न परमं सुखमाश्नुते।।(भगवद गीता 18.57)

अर्थात् जो व्यक्ति समर्पण और श्रद्धा के साथ सभी कार्यों को मुझमें (ईश्वर में) समर्पित कर देता है, वह अपने कर्मों के फल का त्याग करता है और सच्चे सुख को प्राप्त करता है। इसलिए, कहा गया है कि ***"श्रद्धा के बिना कार्यों का फल निरर्थक होता है।"***

9.5. कर्तव्यकर्म हीसनातन यज्ञ हैं :

सनातन धर्म में यज्ञ को बहुत महत्व दिया गया है। वास्तव में सनातन धर्म में कर्तव्यकर्म को हीं यज्ञ कहा जाता है।

साधारणतः हवनकुण्ड़–संविधा–अग्नि–हवनसामग्री के माध्यम से ईश्वर के प्रति समर्पण के कर्मकाण्ड़ को यज्ञ समझा जाता है। परन्तु ऐसा नहीं हैं। स्वाध्याय भी एक प्रकार का यज्ञ है जिसे ज्ञानयज्ञ कहा जाता है। इसमें साधारणतः यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाले हवनकुण्ड़–संविधा– अग्नि–हवनसामग्री की आवश्यकता नहीं होती है। ***मेरे विचार से यज्ञ का अर्थ कुछ विशिष्ठ को पाने की इच्छा से किया जानेवाला समर्पण है।***

कर्मकाण्ड के अनुसार यज्ञ कुण्ड के पास सांकेतिक पंचशीर्ष को रखने की परंपरा। जिसमें 1. नर, 2. अश्व, 3. वृष,4 मेष, 5. अज । जो क्रमशः अहंकार,बल का अनुचित प्रयोग , इन्द्रिय अनिग्रह , अन्धानुकरण, तथा लोभ

का प्रतीक माना जाता है । इनके समर्पण के बिना किसी भी प्रकार के कर्तव्यकर्म के सफलता में सदा संदेह हीं रहता है।

अतः सनातन धर्म का का मुख्य लक्ष्य आसक्ति को प्रेम में बदलकर परमानन्द पाने के लिये अपने सभी कर्तव्यकर्मो को सदा यज्ञ के समान करने के लिए प्रेरित करना है। यह तब हीं संभव है जब कर्तव्यकर्मो करने वाला अर्थात् यज्ञकर्ता अपने अहंकार, बल का अनुचित उपयोग, इन्द्रिय अनिग्रह , अन्धानुकरण एवं लोभ का त्याग कर अपना कर्तव्यकर्म अथवा यज्ञ करे। यह सूत्र किसी भी कर्म की सफलता के लिये रामवाण औषधि है।

गृहस्थ जीवन विवाह नामक सुसंस्कार के बाद आरंम्भ होता हैं । सनातन धर्म के अनुसार पति–पत्नी का रिश्ता अत्यन्त पवित्र रिश्ता माना जाता है, इसलिए पत्नी को धर्मपत्नी कहा जाता है। साधारण रुप से यह आसक्ति से प्रेरित प्रतीत होता है। परन्तु धर्मपथ पर दोनों एक दुसरे के सहयोगी होतें हैं। पति–पत्नी के बीच प्रेम तब हीहो सकता है जब दोनो मिलकर सारे सांसारिक कर्मो को यज्ञ के भाँती करें। जो अहंकार, अनुचित बलप्रयोग ,इन्द्रिये अनिग्रह,अन्धानुकरण ,एवं लोभ से रहित हो।

उपसंहार *:–सनातन दिनचर्या प्रकृति के सहयोग के सिद्धान्त पर आधारित है। जबकि सनातन जीवनचर्या मोह के क्षय के लिए किये जानेवाल कर्तव्यकर्म अथवा यज्ञ के सिद्धान्त पर आधारित होता है। सनातन धर्म का मुख्य लक्ष्य लोगों के आसक्ति को प्रेम में बदलकर परमानन्द प्राप्त करने के लिए पथ प्रदर्शित करना है। यह कर्तव्यकर्म अथवा यज्ञ करने की बात करता है। यह कभी भी कर्तव्यकर्म छोड़ने की बात नहीं करता है।*

इति शुभम्